पर्यावरण एवं धारणीय विकास
Environment and Sustainable Development

पर्यावरण क्षरण : कारण, प्रभाव एवं निदान
(Environmental Degradation : Causes, Effects and Remedies)

आसपास के परिवेश के वह सभी तत्व तथा परिस्थितियां, जो हमें चारों ओर से घेरे हुए हैं, पर्यावरण कहलाती है। पर्यावरण वास्तव में मौलिक एवं जैविक तत्वों के पारस्परिक कार्यवाही संबंध को कहते हैं। पर्यावरण के मौलिक तत्वों में स्थान, भू-आकृतियों, जलाशयों, जलवायु, जलअपवाह, शैल, मृदा, खनिज सम्पदा आदि, जबकि जैविक तत्व में मानव, पशु पक्षी एवं वनस्पति सम्मिलित हैं।

पर्यावरण में निरंतर परिवर्तन होता रहता, अर्थात् - पर्यावरण सदैव गतिशील है। लगभग 4.6 बिलियन वर्ष पूर्व जब पृथ्वी की उत्पत्ति हुई, तब से ही पृथ्वी के धरातल एवं पर्यावरण में परिवर्तन होता रहा है। पृथ्वी के भू-गार्भिक इतिहास में अन्तर्जात तथा बर्हिजात बलों के कारण तब्दीली होती रही है, परन्तु आज के समय में पृथ्वी और पर्यावरण में भारी परिवर्तन मानव के द्वारा हो रहा है।

पर्यावरण क्षरण भूमि, जल, वायु एवं पृथ्वी के अन्य तत्वों के अनियंत्रित दोहन तथा वन्य जीव एवं प्राकृतिक पर्यावरण के ह्रास होने पर घटित होता है। यह पृथ्वी के प्राकृतिक अवस्था में किसी अवांछनीय एवं हानिकारक परिवर्तन को दर्शाता है। पारिस्थितिकीय कुप्रभाव एवं पर्यावरण का विघटन मानव की बढ़ती हुई जनसंख्या एवं उसके द्वारा प्रयोग किए जाने वाले अपरिष्कृत तकनीकी का परिणाम है। जब पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुन उपयोग एवं पर्यावरण को अत्यधिक प्रदूषित किया जाता है, तो इससे न केवल विभिन्न प्रजातियों के जीवों पर संकट उत्पन्न होता है, बल्कि हवा, पानी और मिट्टी की गुणवत्ता का भी ह्रास होता है।

पर्यावरण क्षरण आज पृथ्वी के समक्ष सबसे बड़े खतरों में से एक है। संयुक्त राष्ट्र संघ की आपदा नियंत्रण की अन्तर्राष्ट्रीय रणनीति के अनुसार पर्यावरणीय क्षरण विश्व के सामाजिक एवं पर्यावरणीय लक्ष्यों को प्राप्त करने में सबसे बड़ा अवरोध है। पर्यावरण क्षरण के कई प्रकार होते है एवं उनको रोकने के लिए कई अलग-अलग विधियों का प्रयोग किया जाता है, जैसे - पर्यावरणीय संसाधनों का संरक्षण एवं प्राकृतिक संरक्षण नियम आदि। इसके तहत् वन्य जीव-जन्तुओं एवं विभिन्न प्रकार के भूमि क्षेत्रों (घास भूमि पठार एवं वन भूमि) को संरक्षण प्रदान किया जाता है।

❐ पर्यावरण क्षरण के कारण (Causes of Environmental Degradation)

- **भूमि असंतुलन (Land Disturbances)**

पर्यावरण क्षरण का एक प्रमुख कारण भूमि असंतुलन है। पौधों की कई प्रजातियां, जैसे - यूकेलिप्ट्स, गार्लिक मस्टर्ड, गाजर घास आदि। अनियंत्रित रूप से बढ़ती है एवं विकास करती है। यह स्थानीय प्रजातियों को या तो नष्ट कर देती है या पारिस्थितिकी असंतुलन की स्थिति उत्पन्न कर देती है, जिससे उस क्षेत्र विशेष के जीवों के लिए प्राकृतिक भोजन प्रणाली में संकट उत्पन्न हो जाता है एवं पूरे पर्यावरण के नष्ट होने का खतरा उत्पन्न हो जाता है।

- **प्रदूषण (Pollution)**

प्रदूषण चाहे हवा, जल, भूमि या ध्वनि के रूप में हो, वह पर्यावरण के लिए बहुत हानिकारक होता है। वायु प्रदूषण मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक होता है, जिसमें प्रदूषित हवा के कण मानव शरीर में प्रवेश कर जाते हैं एवं स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालते है। यही कार्य जल एवं भूमि प्रदूषण भी करता है। ध्वनि प्रदूषण भी मानव के लिए हानिकारक है। अत्यधिक ध्वनि मानव के सुनने की क्षमता को प्रभावित करती है।

- **जनसंख्या (Population)**

अत्यधिक जनसंख्या प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को अनियंत्रित कर देती है, जिससे पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। क्योंकि जनसंख्या को भोजन देने के लिए अधिक खाद्यानों की आवश्यकता पड़ती है एवं आवास उपलब्ध कराने के लिए बड़े पैमाने पर आवास स्थलों का निर्माण किया जाता है। बढ़ती जनसंख्या ही निर्वनीकरण के लिए उत्तरदायी है।

- **भूमि पर अपशिष्ट पदार्थों का संग्रह (Landfills)**

भूमि पर अपशिष्ट पदार्थों के संग्रह से पर्यावरण एवं वहां निवास करने वाले लोगों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसे

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

अपशिष्ट पदार्थों के संग्रहित क्षेत्र विसर्जन स्थल के नाम से जाने जाते है। ऐसे विसर्जन स्थल किसी भी प्रकार के आवास के रूप में सदा के लिए अनुपयुक्त हो जाते है। इसी तरह से व्यापारिक स्थल पर खनन किया जाना, लट्ठे कांटना, मवेशियों को चराना आदि पर्यावरण पर विपरित प्रभाव डालते है।

- **वनों की कटाई (Deforestration)**

घर एवं उद्योगों के लिए पेड़ों को कांटना ही निर्वनीकरण कहलाता है। जनसंख्या के तीव्र गति से बढ़ने, शहरीकरण, पशुओं की चराई, कृषि भूमि के लिए वनों की कटाई, ईंधन के लिए लकड़ी के प्रयोग आदि के कारण निर्वनीकरण की समस्या और जटिल हो गई है। निर्वनीकरण ग्लोबल वार्मिंग में भी योगदान देता है, जो विश्व के समक्ष एक गंभीर समस्या बनकर उभरी है।

- **प्राकृतिक कारण (Natures Causes)**

हिमस्खलन, भूकम्प, ज्वार-भाटा, तूफान, जंगल की आग आदि क्षेत्र विशेष के जीवों एवं पारिस्थितिक तंत्र को पूरी तरह नष्ट कर देती है। भौतिक विध्वंस के माध्यम से प्राकृतिक आपदाएं कई विदेशी प्रजातियों का सृजन भी करती है, जिससे पर्यावरण पर दीर्घकालिक प्रभाव पड़ता है।

❒ पर्यावरण क्षरण के प्रभाव (Effects of Environmental Degradation)

आज के समय में धरती पर मानव का बोलबाला है। मानव जनसंख्या तीव्र गति से बढ़कर 7 अरब (Seven Billion) के आंकड़े को पार कर चुकी है। मानव ने जल अपवाह की दिशा में परिवर्तन किया, नदियों के रास्तों में परिवर्तन किया, सागरीय जल को प्रदूषित किया, वायुमण्डल में हानिकारक गैसों का उत्सर्जन किया, मृदा के रासायनिक तत्वों (Soil Chemistry) में परिवर्तन किया, जिनके कारण पारिस्थितिकी-तंत्रों (Ecosystems) में तेजी परिवर्तन से हो रहा है। वास्तव में मानव हस्तक्षेप और संसाधनों के अधिक उपयोग एवं दुरूपयोग के कारण विश्व-तापमान में वृद्धि हो रही है। तेजाबी वर्षा (Acidic Rainfall), हो रही है, वायुमण्डल की ओजोन परत (Ozone Layer), का ह्रास हो रहा है, मरूस्थलों का क्षेत्रफल बढ़ रहा है, मृदा-अपरदन (Soil- erosion) की गंभीर समस्या उत्पन्न हो रही है, जैव-विविधता का ह्रास हो रहा है, पारिस्थितिकी तंत्रों में असंतुलन उत्पन्न हो रहा है। मानव द्वारा पर्यावरण में होने वाले परिवर्तन के परिणामों को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत देख सकते हैं -

- **जलवायु परिवर्तन (Climate Change)**

सौर विकिरण से पृथ्वी की सतह और वायुमण्डल गर्म होते हैं। आने वाले विकिरण का लगभग एक-तिहाई भाग वापिस अंतरिक्ष में परावर्तित हो जाता है, लगभग 20 प्रतिशत वायुमण्डलीय गैसों द्वारा अवशोषित कर ली जाती हैं और शेष भाग पृथ्वी की सतह तक पहुंचता है, जहां वह अवशोषित हो जाता है। इस प्रकार अवशोषित ऊर्जा अवरक्त किरणों (Infrared Rays) के रूप में वापिस परावर्तित होती हैं। इसमें से कुछ विकिरण वायुमण्डलीय गैसों द्वारा अवशोषित हो जाता है और इस तरह आने वाली कुल ऊर्जा का सम्पूर्ण भाग वापस अंतरिक्ष में नहीं पहुंचता है।

अत: कुछ ऊष्मा इन गैसों द्वारा रोक ली जाती है, जिससे वायुमण्डल गर्म हो जाता है और यह पृथ्वी पर पाए जाने वाले जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह स्थिति ग्रीन हाऊस (Green House) जैसी है, जिसमें कांच की दीवारें ऊष्मा को बाहर नहीं जाने देती हैं और भीतर का तापमान बढ़ता है, इसीलिए इसे ग्रीन हाऊस प्रभाव (Green House Effects) कहा जाता है। ग्रीन हाऊस गैसों जैसे - कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनो ऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, क्लोरोफ्लोरो कार्बन तथा जल-वाष्पों के कारण ही ग्रीन हाऊस प्रभाव पैदा होता है। इसमें जल का योगदान लगभग दो-तिहाई और कार्बन डाइऑक्साइड का लगभग एक-चौथाई होता है।

वायुमण्डल में पाई जाने वाली अन्य गैसों, जैसे - नाइट्रोजन (N_2), ऑक्सीजन(O_2), ऑर्गन (A_r), अवरक्त विकिरण का अवशोषण करने में असमर्थ होती हैं। औद्योगिक क्रांति के बाद वायुमण्डल में जलवाष्पों की सांद्रता में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, लेकिन ग्रीन हाऊस गैसों की मात्रा में बहुत वृद्धि हुई है। मानव क्रियाकलापों, जैसे - जीवाश्म ईंधनों से ऊर्जा उत्पन्न करने तथा वनोन्मूलन CO_2 से की सांद्रता बढ़ी है। CO_2 तथा अन्य ग्रीन हाऊस गैसों की सांद्रता बढ़ने से ग्रीन हाऊस प्रभाव में वृद्धि हुई हैं। इससे विश्व स्तर पर तापमान बढ़ा है, जिसे भू-मण्डलीय तापन (Global Warming) कहा जाता है। अध्ययनों से पता चलता है कि 1860 की तुलना में 0.3°C-0.6°C तापमान बढ़ चुका है और पिछले 2 दशक 20वीं सदी के सबसे गर्म दशक थे और उनमें भी खासतौर से 1998 का वर्ष अधिक गर्म था।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

ग्लोबल वार्मिंग के खतरों तथा उस पर अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय की प्रतिक्रिया ने भारत के अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के लिए एक बड़ी चुनौती उपस्थित कर दी है। पिछले कुछ दशकों से वैज्ञानिक डेटा का संग्रह हुआ तथा इस आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि पृथ्वी का तापमान क्रमिक रूप में बढ़ रहा है। 20वीं सदी में यह वृद्धि 0.74° सेंटीग्रेड रही। यह वृद्धि मुख्यत: कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन एवं नाइट्रस ऑक्साइड जैसे ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन के कारण हुई। इस उत्सर्जन का कारण था - बढ़ती हुई मानवीय गतिविधियां। कार्बन डाइऑक्साइड के स्तर में व्यापक वृद्धि चिंता का बड़ा कारण है। बताया जाता है कि कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर 1832 में 284 Parts per million per volume (ppmv) था, जो 2010 में बढ़कर 390 ppmv हो गया तथा वह 1.9 ppmv प्रति वर्ष की दर से बढ़ रहा है। कार्बन डाइऑक्साइड के स्तर में वृद्धि का कारण कार्बन पर आधारित ईंधन के प्रयोग को बताया जाता है। यह औद्योगिक क्रांति के पश्चात् एक सामान्य-सी बात बन गई। उसी प्रकार मीथेन तथा नाइट्रस ऑक्साइड में वृद्धि का कारण कृषि गतिविधियां रहीं।

कार्बन डाइऑक्साइड के स्तर में वृद्धि का एक स्वाभाविक परिणाम था कि पृथ्वी के द्वारा सौर ऊर्जा का अत्यधिक अवशोषण स्वाभाविक रूप में इसने ग्लोबल वार्मिंग की समस्या को जन्म दिया है। तापमान में किस हद तक वृद्धि हो रही है और इसकी गणना के लिए अनेक विधियां अपनाई गईं, यद्यपि निष्कर्ष में थोड़ी-बहुत भिन्नता देखने को मिलती है। एक ग्लोबल साइंटिफिक समूह जलवायु परिवर्तन पर अन्तरसरकारी पैनल (The International Panel on Climate Change, IPCC) का निष्कर्ष है कि अगर वर्तमान प्रवृत्ति जारी रही, तो संभवत: 2100 ई. तक औसत वैश्विक तापमान में 1.1 से 6.4 डिग्री-सेंटीग्रेड तक की वृद्धि होगी। यह वृद्धि वैश्विक जलवायु एवं पर्यावरणीय स्थिति में एक बड़ा नकारात्मक परिवर्तन लाएगा तथा इस परिवर्तन का परिणाम होगा तूफान, बाढ़, सूखा आदि जैसी प्राकृतिक आपदाएं सबसे बढ़कर इन परिवर्तनों के कारण सामुद्रिक जल के स्तर में वृद्धि होगी, जिससे तटीय क्षेत्र एवं अनके द्वीप जल के अंदर समाहित हो जाएंगे।

❖ वैश्विक तापन और उसका प्रभाव (Global Warming & its Effects)

ग्रीन हाऊस प्रभाव का सबसे बड़ा खतरा वैश्विक जलवायु परिवर्तन के रूप में हमारे सामने है। इसकी शुरुआत वैश्विक तापन में वृद्धि के रूप में हो चुकी है। मानव ने अपने विविध उद्देश्यों, मसलन-कृषि व निजी जरूरतों की पूर्ति हेतु वनों का सफाया तो तेजी से किया, किंतु उस अनुपात में पौधारोपण नहीं किया। दूसरी तरफ तीव्र औद्योगीकरण और भौतिकता से परिपूर्ण गतिविधियों को बढ़ाकर ग्रीन हाऊस गैसों की मात्रा को वायुमण्डल में बढ़ाया। वनों के विनाश से जहां वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ती गई, वहीं ऑक्सीजन की मात्रा घटती गई। नतीजतन वायुमण्डलीय तापमान में वृद्धि हुई, क्योंकि कार्बन डाइऑक्साइड वह गैस है, जो कि पृथ्वी से परावर्तित पार्थिव विकिरण के लिए पारदर्शी नहीं होती है। इससे तापमान बढ़ता है और जलवायु परिवर्तन होता है। इतना ही नहीं, जहां जलवायु शुष्क होती है, वहीं रेगिस्तान भी बढ़ते हैं। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव निम्नलिखित रूपों में सामने आते हैं -

1) **बर्फ का पिघलना (Melting of Snow)** - जब भू-मण्डलीय तापमान बढ़ता है, तो इसका प्रभाव बर्फ के पिघलने के रूप में सामने आता है। तापमान के हिमांक से ऊपर चले जाने के कारण हिमाच्छादित क्षेत्रफल पिघलने लगते हैं। ध्रुवों पर जमी बर्फ के पिघलने से पर्यावरण और जैव विविधता प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है। विश्व के कई क्षेत्रों में ग्लेशियरों के पिघलने की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। हिमालय भी इससे अछूता नहीं रहा। ग्लेशियर मीठे जल के स्रोत होते हैं, जब ये पिघल जाएंगे, तो मीठे जल का अकाल पड़ेगा ही, पेयजल में भी लवणों की मात्रा बढ़ जाएगी। बर्फ के ग्लेशियर पिघलने से दोहरी समस्या उत्पन्न होती है। पहले तो बाढ़ आती है, बाद में सूखे की स्थिति निर्मित होती है।

2) **समुद्र तल का ऊपर उठना (Rise in Sea Level)** - जब ग्लेशियर पिघलना शुरू होते हैं, जो पिघला हुआ पानी पहले नदियों में आता है और उसके बाद नदियों से होकर यह सागरों में मिलता है, जिससे समुद्रों का जल स्तर बढ़ने लगता है। पूर्व की तुलना में आज समुद्रों के तल के ऊपर उठने का मुख्य कारण ग्लेशियरों का पिघलना ही है। वैज्ञानिक विश्लेषणों से पता चलता है कि वर्ष 1993 से 2003 तक समुद्र तल में 3 मिलीमीटर की गति से उठान दर्ज की गई और यदि तापमान में होने वाली वृद्धि से पैदा हुआ बर्फ का पिघलना इसी प्रकार जारी रहा, तो वर्ष 2100 तक समुद्र तल 28 से 43 सेंटीमीटर तक ऊपर उठ सकता है। समुद्र तट के निरंतर ऊपर उठने से जल प्रलय की स्थिति निर्मित हो जाएगी। पूरा समुद्र तंत्र ही चरमरा जाएगा। विश्व के अनेक निचले व तटवर्ती इलाके जलाच्छादित हो जाएंगे। कृषि योग्य भूमि नष्ट हो जाएगी और बीमारियां बढ़ेंगी।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

समुद्र तल जब ऊपर उठता है, तो समूचा तंत्र तबाह को जाता है। तटवर्ती नगर व बंदरगाह डूब जाते हैं। इससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस समय विश्व की लगभग आधी जनसंख्या तटीय क्षेत्रों में निवास करती है। समुद्र तल ऊपर उठने से इनके लिए तो महाप्रलय की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। इससे सारी वैश्विक व्यवस्था ही ध्वस्त हो जाएगी और वैश्विक स्तर पर शरणार्थी समस्या बढ़ेगी। मालदीव, नीदरलैण्ड व बहामास जैसे द्विपीय देश तो इस जल प्रलय में पूर्णत: अपना अस्तित्व खो सकते हैं।

3) **महासागरीय धाराओं में परिवर्तन (Change in Ocean Currents)** - जलवायु परिवर्तन का प्रभाव महासागरीय धराओं में परिवर्तन के रूप में भी दृष्टिगोचर होता है, क्योंकि इससे महासागरीय जल के तापमान, लवणता तथा घनत्व आदि में बदलाव आता है। इससे महासागरीय धराओं की गति, दिशा व आकार प्रभावित होता है। जब धाराओं का प्रवाह चक्र प्रभावित या परिवर्तित होता है, तो ऊष्मा के स्थानान्तरण की प्रक्रिया भी बाधित होती है।

4) **ऊष्णकटिबंधीय चक्रवातों की संख्या एवं तीव्रता में वृद्धि (Increase in Number and Intersity of Tropical Cyclones)** - ध्रुवों की बर्फ पिघलने से न सिर्फ समुद्रों के तल उठते हैं, बल्कि उनका आकार भी बढ़ता है। इसका परिणाम इस रूप में भी सामने आता है कि जल के उठे हुए तल एवं तापमान अधिक होने से वाष्पीकरण की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है। इससे जहां आर्द्रता बढ़ती है, वहीं गुप्त ऊष्मा के बल के कारण ऊष्णकटिबंधीय चक्रवात न सिर्फ अधिक आते हैं, बल्कि उनका स्वरूप भी अधिक बलशाली होता है। ये जान-माल का व्यापक नुकसान तो पहुंचाते ही है। साथ ही मरूस्थलीकरण, बाढ़, सूखे तथा मृदा अपरदन जैसी समस्याओं के भी जन्मदाता होते हैं, जो कृषि उत्पादन को भी प्रभावित करते हैं।

5) **अन्त: ऊष्णकटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र में परिवर्तन (Change in Inter-tropical Convergence Zone)** - वैश्विक तापन में वृद्धि: ऊष्णकटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र में भी परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है। यह क्षेत्र वह निम्न भार क्षेत्र होता है, जहां पर उत्तर और दक्षिण से आने वाले पवनों का मिलन होता है। इनका स्थानान्तरण ऋतु परिवर्तन पर निर्भर करता है और इसके साथ यह जुलाई में उत्तर तथा जनवरी में दक्षिण की ओर स्थानान्तरित हो जाता है। वैसे सामान्य रूप से इसका प्रभाव क्षेत्र 5° उत्तरी व दक्षिणी अक्षांश तक ही सीमित रहता है। ताप बढ़ने से इसके विस्तार की गुंजाइश अधिक अक्षांशों तक बढ़ जाती है, जिससे ऊष्णकटिबंधीय जलवायु प्रभावित होती है और भारत जैसे देशों की मानसूनी हवाएं इससे प्रभावित होती हैं।

6) **वर्षा के प्रारूप में परिवर्तन (Change in Patterns of Pricipitation)** - वैश्विक तापन का एक प्रभाव यह भी सामने आता है कि इससे ध्रुवीय क्षेत्रों के तापमान में अधिक वृद्धि होती है, बजाय ऊष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के । इससे वर्षा की पेटियों का ध्रुवों की ओर विस्थापित होने का खतरा बढ़ जाता है। इससे वर्षा की गहनता और तीव्रता बढ़ती है। फलत: शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में विनाशकारी तूफान और बाढ़ आदि के खतरे बढ़ जाते हैं।

7) **मिट्टी में आर्द्रता का कम होना (Reduction of Moisture in the Soil)** - जब तापमान बढ़ता है, तो उसी के साथ वाष्पन की क्रिया तेज हो जाती हैं। तीव्र वाष्पीकरण के कारण मिट्टी की आर्द्रता में कमी आने लगती है। आर्द्रता में कमी से जहां पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, वहीं यह स्थिति मरूस्थलीकरण को भी जन्म देती हैं।

8) **कृषि पर प्रभाव (Effect on Agriculture)** - जलवायु परिवर्तन के कृषि पर व्यापक दुष्प्रभाव पड़ते हैं। तापमान बढ़ने से जहां पौधे में नमी कम हो जाती है, वहीं भूमि की आर्द्रता कम होने से ऐसे पौधे ठीक से पनप नहीं पाते हैं, जिन्हें ज्यादा नमी और जल की आवश्यकता होती है। अधिक तापन के कारण उन फसलों के नष्ट होने का खतरा बढ़ जाता है, जिन्हें उपयुक्त वृद्धि हेतु निश्चित सीमा के नए प्रकार के कीट-पतंगे पैदा होने लगते हैं। इन पर सामान्य कीटनाशकों का प्रभाव कम पड़ता हैं। फलत: फसलों को क्षति पहुंचती है।

9) **जंगलों पर प्रभाव (Effect on Forests)** - जलवायु परिवर्तन से जंगल भी व्यापक पैमाने पर दुष्प्रभावित होते हैं। तापमान में वृद्धि के कारण वे पौधे नष्ट होने लगते हैं, जो मुलायम व कोमल प्रकृति के होते हैं। इससे हरित जैव मास, अर्थात् - हरियाली में कमी आने लगती है। तापमान में वृद्धि से जगलों में आग की घटनाएं भी बढ़ने लगती हैं, जिससे वनस्पति को व्यापक क्षति पहुंचती है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

❖ जलवायु परिवर्तन और भारतीय स्थिति (Climate Change and Indian position)

राजनीति वार्ताओं में जलवायु परिवर्तन प्रमुख विवादित मुद्दा रहा है और इस मुद्दे पर भारत की स्थिति पर विस्तार से बातचीत की जरूरत है। इस बात को याद दिलाया जाना चाहिए कि भारत ने पूरे अधिकार के साथ इन मुद्दों पर 2009 में अपनी स्थिति को साफ कर दिया था।

1) **साझा लेकिन अलग-अलग जिम्मेदारी का सिद्धान्त (Common But Differential Responsibility)** - इस सिद्धान्त की स्थापना यूएनएफसीसीसी में हुई थी और भारत ने इस बात को जोर देकर कहा था कि जलवायु परिवर्तन पर किसी भी तरह की बातचीत इस सिद्धान्त को आधार बनाकर की जानी चाहिए। सिद्धान्त इस बात पर मुहर लगाता है कि जलवायु परिवर्तन को रोकने हेतु होने वाले प्रयासों में विकसित देशों को ज्यादा सहयोग करना चाहिए। विकसित देशों की ऐतिहासिक जिम्मेदारी का नतीजा इसी सिद्धान्त से आया है। हालांकि विकसित देश इस सिद्धान्त से बचना चाह रहे हैं। साथ ही ये मांग कर रहे हैं कि भारत और चीन जैसे उभरते देशों को भी उनके साथ इसमें बराबर का सहयोग करना चाहिए।

2) **ग्रीन हाऊस गैसों में कमी (Reduction in Green House Gases)** - इसमें पक्षों के बीच इस बात पर सहमति बनी है कि ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन इस स्तर तक कम होना चाहिए कि वैश्विक तापमान पूर्व औद्योगिक स्तर से 2 डिग्री सेंटीग्रेड ज्यादा नहीं होना चाहिए। प्रस्तावित बातचीत का ये सबसे महत्वपूर्ण पहलू है, जहां विकसित और विकासशील देशों के विचार एक-दूसरे के खिलाफ हैं। भारत और दूसरे विकासशील देशों का यह मानना है कि जलवायु परिवर्तन के संकट के लिए ऐतिहासिक तौर पर जिम्मेदार रहे विकसित देशों को कार्बन उत्सर्जन पर रोक लगाने के लक्ष्यों के साथ आगे आना चाहिए। 2012 तक क्योटो प्रोटोकॉल द्वारा दिए गए लक्ष्यों को विकसित देश नहीं पूरा कर पाए हैं।

3) **अनुकूलन (Adaptation)** - इसमें जलवायु परिवर्तन के नतीजों को कारगर तरीके से निपटने के लिए राष्ट्रों विशेष रूप से कमजोर और गरीब राष्ट्रों की क्षमता को बढ़ाने के उपायों पर जोर शामिल है। जलवायु परिवर्तन का असर सबसे ज्यादा उन हिस्सों पर होता है, जिनमें जलवायु परिवर्तन को अपनाने की क्षमता नहीं है। भारत और दूसरे विकासशील देश ये मांग कर रहे हैं कि जलवायु परिवर्तन कम करने के उपायों से ज्यादा अनुकूलन को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, क्योंकि जलवायु परिवर्तन के बूरे प्रभावों से गरीब देश सबसे ज्यादा प्रभावित हैं।

4) **वित्तीय व्यवस्था (Financial Arrangements)** - प्रस्तावित जलवायु परिवर्तन वार्ता के कई पहलुओं में से एक जलवायु परिवर्तन के नतीजों को रोकने और उससे लड़ने के उपायों के लिए वित्त की व्यवस्था करना है। विकासशील देश और भारत इस बात की मांग कर रहे हैं कि अपनी ऐतिहासिक जिम्मेदारियों के चलते विकसित देशों को जलवायु परिवर्तन के उपायों को लागू करने के लिए पर्याप्त वित्तीय स्रोत को मुहैया कराना चाहिए। विकसित देश चाहते हैं कि उभरती अर्थव्यवस्थाओं को भी वित्तीय सहयोग देना चाहिए। बाद में विकसित देश जलवायु परिवर्तन के तहत् अपनी वित्तीय जिम्मेदारियों को आधिकारिक विकास के साथ समायोजित कर लेना चाहते थे। एक बार फिर विकसित देश जलवायु परिवर्तन के उपायों के फण्ड को जुटाने के लिए निजी क्षेत्र को शामिल करना चाहते थे। विकसित देशों द्वारा प्रस्तावित इन दोनों कदमों का भारत सहित विकासशील देशों ने स्पष्ट कारणों से विरोध किया था।

5) **प्रौद्योगिकी का हस्तान्तरण (Transfer of Technology)** - एक और महत्वपूर्ण मुद्दा विकसित और उचित प्रौद्योगिकी का विकासशील देशों के हस्तान्तरण का है, जिससे वे अपने उत्सर्जन में कमी और अनुकूलन के उपायों को अपना सकें। गरीब देश इस बात की उम्मीद करते हैं कि विकसित देशों को उचित प्रौद्योगिकी का तेजी से हस्तान्तरण करना चाहिए, क्योंकि ये देश इस तरह की प्रौद्योगिकी के विकास में निवेश करने की स्थिति में नहीं हैं। भारत एक उदार व्यवस्था का पक्षधर रहा है, जिसमें जरूरत की प्रौद्योगिकरी का तबादला आराम से बगैर किसी तनाव के सम्पन्न होना चाहिए।

6) **प्रति व्यक्ति बनाम कुल कार्बन उत्सर्जन (Per Capita V/s Total Carbon Emission)** - कार्बन उत्सर्जन के स्तर को मापने का यह एक और विवादित आधार है। भारत ये चाहता है कि प्रति व्यक्ति कार्बन उत्सर्जन बहुत कम है। हालांकि विकसित देश कार्बन उत्सर्जन की कुल मात्रा के आधार पर गणना पर जोर देते हैं और सभी मोर्चे पर भारत अमेरिका और चीन के बाद तीसरे नंबर पर है। मौजूदा समय में भारत में प्रति व्यक्ति उत्सर्जन देशों में 10 टन है। जहां तक तीसरे उत्सर्जक

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

के तौर पर अमेरिका और चीन से कम है। वैश्विक कार्बन उत्सर्जन में भारत की हिस्सेदारी केवल 4 प्रतिशत, जबकि चीन और अमेरिका की 16 प्रतिशत है।

❐ जलवायु परिवर्तन को रोकने संबंधी कुछ भारतीय प्रयास
(Indias attempts to Stop Climate Change)

जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों से निपटने के लिए भारत ने 30 जून, 2008 को राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्ययोजना (NAPCC) का गठन किया गया था। इस कार्ययोजना ने 8 मिशनों को पूरा करने की अवधि 2017 रखी है। जलवायु परिवर्तन प्रबंध प्रणाली (Climate Management System) के अन्तर्गत विकास कार्यक्रमों को बाधित किए बिना कार्बन उत्सर्जन की मात्रा में कमी तथा उसके अनुरूप लाभ प्राप्त करना इस कार्य योजना का मुख्य उद्देश्य है। इस 8 मिशनों की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं –

- **राष्ट्रीय सौर मिशन (National Solar Mission)**

ऊर्जा के नवीकरणीय स्रोत के रूप में भारत में सौर ऊर्जा उत्पादन की क्षमता का आकलन कर नगरीय क्षेत्रों, औद्योगिक इकाइयों तथा वाणिज्यिक संस्थानों में सौर ऊर्जा के कुशल उपयोग पर इस मिशन में ध्यान केन्द्रित किया गया है। इस मिशन के तहत् फोटो वोल्टेइक प्रौद्योगिकी की सहायता से प्रतिवर्ष 1000 मेगावॉट और ऊर्जा के उत्पादन का लक्ष्य रखा गया है। उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय सौर मिशन सौर ऊर्जा परियोजनाओं को समर्थन तथा घरेलू क्षमता में वृद्धि पर ध्यान केन्द्रित करता है।

- **राष्ट्रीय जल मिशन (National Water Mission)**

जलाभाव (Water Scarcity) की गंभीर समस्या का आकलन करते हुए इस मिशन के अन्तर्गत जल उपयोग (Water Consumption) की कार्य कुशलता बढ़ाने के लिए कीमत निर्धारण की प्रणाली को तार्किक बनाने का लक्ष्य रखा गया है। इस मिशन में जल उपयोग कार्य कुशलता में 20 प्रतिशत की वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है।

- **राष्ट्रीय हरित भारत मिशन (National Green India Mission)**

भारतीय वन सर्वेक्षण के पिछले आंकड़ों व आकलनों को ध्यान में रखकर इस मिशन के अन्तर्गत 6 मिलियन हेक्टेयर क्षरित भूमि (Degraded Land) पर नवीकरण का लक्ष्य निर्धारित किया जाता है। इसमें भारत के कुल भू-क्षेत्र पर 23 प्रतिशत वनाच्छादन को 33 प्रतिशत करने का लक्ष्य भी निर्धारित किया गया है।

- **राष्ट्रीय संवर्द्धित ऊर्जा कार्य कुशलता मिशन (National Mission for Enhanced Efficiency)**

इस मिशन के तहत् ऊर्जा संरक्षण अधिनियम, 2001 (Energy Conservation Act, 2001) के अनुरूप 2012 तक 10,000 मेगावॉट ऊर्जा की बचत का लक्ष्य रखा गया था। मिशन में ऊर्जा कार्य कुशलता उपकरणों पर कर सम्बन्धी रियायतें तथा ऊर्जा संरक्षण के लिए प्रोत्साहन देने की बात की गई है। यह मिशन उपभोग के क्षेत्र में सार्वजनिक निजी-भागीदारी को बढ़ावा देने पर ध्यान केन्द्रित करता है।

- **राष्ट्रीय सतत् निवास्य क्षेत्र मिशन (National Mission on Sustainable Habitat)**

इस मिशन के अन्तर्गत नगर नियोजन की मूल भावना के अन्तर्गत ऊर्जा संरक्षण भवन संहिता का निर्धारण किया गया है। राष्ट्रीय सतत् विनास्य क्षेत्र मिशन अपशिष्ट प्रबंधन (Waste Management) तथा अपशिष्टों से ऊर्जा उत्पादन (Energy Production Through Wastes) को प्रोत्साहन प्रदान करता है। इसके अन्तर्गत सार्वजनिक परिवहन का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहन दिया गया है।

- **राष्ट्रीय सतत् कृषि मिशन (National Sustainable Agriculture Mission)**

कृषि भारत की समूची अर्थव्यवस्था का मूल आधार है, जिसमें 11वीं पंचवर्षीय योजना में लक्षित जीडीपी के 4 प्रतिशत वृद्धि के बिना और इस क्षेत्र को गुणात्मक बनाए बिना, अर्थव्यवस्था का सतत् विकास नहीं हो सकता। अत: इस दृष्टिकोण के साथ जलवायु परिवर्तन की इस कार्य योजना के तहत् राष्ट्रीय सतत् कृषि मिशन की शुरुआत की गई। इस मिशन के अन्तर्गत कृषि में जलवायवीय अनुकूलन की क्षमता का विकास कराने पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। इसके अन्तर्गत मौसम आधारित बीमा प्रक्रियाओं का संचालन व जलवायु आधारित फसलों के विकास के लक्ष्य का निर्धारण किया गया है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

- **राष्ट्रीय हिमालयी पारितंत्र संरक्षण मिशन**

(National Mission for Sustaining The Himalayan Ecosystem)

कृषि हिमालयी क्षेत्र जैव विविधता का अद्वितीय स्रोत है, परन्तु इस पारितंत्र पर जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों ने हिमालयी वन्य जीवों की प्रजातियों की विलुप्ति, वनस्पतियों व वृक्षों का ह्रास, ग्लेशियर के पिघलने को प्रोत्साहन दिया है। इस मिशन के अन्तर्गत ग्लोबल वार्मिंग पर अंकुश लगाने की आवश्यकता पर बल दिया गया है, जिससे हिमनदों के पिघलने की दर को कम किया जा सके।

- **राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन रणनीतिक ज्ञान मिशन**

(National Mission on Strategic Knowledge for Climate Change)

इस मिशन के अन्तर्गत एक जलवायु मिशन अनुसंधान निधि की स्थापना का प्रावधान किया गया है। इसके तहत् इस क्षेत्र में अध्ययनों एवं अनुसंधानों को प्रोत्साहित करने का लक्ष्य रखा गया है। साथ ही मिशन के अन्तर्गत जोखिम पूंजी प्रदान करने के लिए निजी इकाइयों को प्रोत्साहन देने की बात की गई है।

❒ भारत के द्वारा पर्यावरण के लिए उठाए गए कदम

1) भारत ने धारणीय विकास के लक्ष्य को अपनाते हुए राष्ट्रीय पर्यावरण नीति, ऊर्जा संरक्षण अधिनियम तथा नए इलेक्ट्रिसिटी एक्ट के द्वारा नवीनीकृत ऊर्जा पर बल दिया है।
2) भारत ने ऊर्जा क्षमता को बढ़ाने के लिए कम्पैक्ट फ्लोरोसेन्ट लैम्प (CFL) के प्रयोग को भी प्रोत्साहन दिया है।
3) 2008 में जलवायु परिवर्तन पर गठित की गई प्रधानमंत्री कॉन्सिल (Prime Minister Council on Climate Change) ने राष्ट्रीय कार्य योजना (National Action Plan on Climate Change) के अन्तर्गत 2020 तक उत्सर्जन सघनता को 2005 के स्तर के 20-25 प्रतिशत तक कम करने का लक्ष्य रखा है।
4) राज्यों से भी अपेक्षा की गई कि वे राज्य स्तर पर भी कार्य योजना तैयार करें। दिल्ली ने 2009-12 हेतु जलवायु कार्य योजना तैयार की थी।
5) भारत में प्रत्येक टन कोयले पर 50 रुपए कर की दर निर्धारित की गई, जिसे नवीनकृत ऊर्जा स्रोत पर खर्च किया जाएगा।
6) 13वीं पंचवर्षीय योजना में उत्सर्जन की गहनता को कम करने के लिए 2017 तक सभी थर्मल पॉवर प्लांटों को सुपर क्रिटिकल पॉवर प्लांटों में बदलने का लक्ष्य रखा गया है।
7) भारत ने परिवहन क्षेत्र में उत्सर्जन गहनता कम करने हेतु बैटरी, सीएनजी एवं जैव ईंधन चालित वाहनों के व्यावसायिक निर्माण को प्रोत्साहन दिया है।
8) भारत ने 10 मिलियन हेक्टेयर अतिरिक्त जंगल लगाने के लिए ग्रीन इंडिया मिशन की शुरुआत की है।
9) भारत में तटीय पर्यावरण को स्थिर करने के लिए 7500 किमी के लम्बे तटीय क्षेत्र पर नजर रखना आवश्यक है। इस उद्देश्य हेतु समुद्री अनुवीक्षण व अनुमान प्रणाली (सीओएम पीएस) को अपनाया गया है।
10) औद्योगीकरण तथा विकास को अधिक पर्यावरण अनुकूल बनाने के लिए हरित न्यायाधीकरण (Green Tribunal) का गठन किया गया है।

- **अम्लीय वर्षा (Acid Rain)**

अम्लीय वर्षा आज एक प्रमुख पर्यावरणीय समस्या है, जिसका स्वरूप दिनों-दिन व्यापक होता जा रहा है। अम्लीय वर्षा शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1872 ई. में ब्रिटेन के अल्कली प्रमुख इस्पेक्टर राबर्ट एन्गस स्मिथ ने किया, जब उन्होंने मेनचेस्टर के क्षेत्र में होने वाली वर्षा में अम्लीयता पाई।

अम्लीय वर्षा से तात्पर्य यह है कि जब प्राकृतिक वर्षा का जल हवा में उपस्थित कतिपय प्रदूषकों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप अम्लीय हो जाता है, तो उस जल को वर्षा को अम्लीय वर्षा की संज्ञा दी जाती है।

इस प्रकार के वायु प्रदूषकों में सर्वाधिक प्रभाव सल्फर और नाइट्रोजन का होता है, यथा -

1) सल्फर डाइऑक्साइड तथा नाइट्रोजन ऑक्साइड वायुमण्डल में विभिन्न स्रोतों से प्रवेश करते हैं। सल्फर ट्राइऑक्साइड में बदल जाता है तथा सल्फर ट्राइऑक्साइड जब वाष्प कणों से क्रिया करता है जो उससे सल्फ्यूरिक एसिड बनता है। इसे

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

निम्नलिखित सूत्र द्वारा बताया जा सकता है –

सल्फर ट्राइऑक्साइड + जलवाष्प --> सल्फ्यूरिक एसिड

2) नाइट्रोजन के ऑक्साइड जब वायुमण्डल में क्रिया करते हैं, तो इससे नाइट्रिक एसिड बनता है।

उक्त दोनों प्रकार के अम्ल बहुत तेज होते हैं। ये अम्ल जब पानी के साथ घुलकर वर्षा के माध्यम से बरसते हैं, तो इसे अम्लयी वर्षा कहा जाता है। जल की अम्लीयता को pH में मापते हैं, जब जल का pH-7 हो, तो उसे तटस्थ जल (Neutral water) कहते हैं। सामान्य वर्षा का माप pH-5 होता है, लेकिन जब यह माप pH-4 से कम होता है तो यह जल जैविक समुदाय के लिए हानिकारक होता है, जितनी अधिक मात्रा में सल्फर डाइऑक्साइड और नाइट्रोजन ऑक्साइड का सान्द्रण वातावरण में होगा, उतना ही वर्षा के जल के pH का माप घटेगा। अम्लीय वर्षा एक विश्वव्यापी समस्या का रूप धारण कर चुकी हैं। यूरोप में नार्वे, स्वेडन, डेनमार्क, फिनलैण्ड, पोलैण्ड, जर्मनी, ब्रिटेन, बेलजियम, फ्रांस आदि इस प्रकार की वर्षा से प्रभावित है। इस प्रकार की वर्षा के लिए बहुत हद तक ब्रिटेन के भारी औद्योगिकरण को जिम्मेदार ठहराया जाता है। ग्रेट ब्रिटेन ने भी इस बात को स्वीकारा है कि उसके द्वारा सल्फर डाइऑक्साइड का उत्सर्जन अधिक हुआ है।

विश्व में चीन का उत्तरी पूर्वी औद्योगिक प्रदेश, दक्षिण पूर्वी एशिया, दक्षिण पूर्व भारत (महाराष्ट्र, गुजरात), हुगली की घाटी, फारस की खाड़ी के देश, नाइजीरिया तथा उत्तरी पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रदेशों अम्लीय वर्षण का भारी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। अम्लीय वर्षा का जल जब नदियों में पहुंचता है, तो उस जल से पारितंत्र पर खराब प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार की वर्षा से भारत का ताजमहल भी प्रभावित हो रहा है।

- **ओजोन क्षरण (Ozone Depletion)**

ओजोन परत समतापमण्डल में 15 से 35 किमी की ऊँचाई पर स्थित है, जो सूर्य से निकलने वाली हानिकारक पराबैंगनी किरणों को अवशोषित कर पृथ्वी पर जीवन की रक्षा करती है, यद्यपि लाखों वर्षों से पृथ्वी के वायुमण्डलीय संरचना में अधिक परिवर्तन नहीं आया है, परन्तु पिछले कुछ वर्षों में मानव ने हानिकारक रासायनिक पदार्थों के उत्सर्जन द्वारा पर्यावरण संतुलन को बिगाड़ दिया है।

ओजोन के अणु में ऑक्सीजन के परमाणु होते हैं। ओजोन एक जहरीली गैस है और पर्यावरण में दुर्लभ भी है। वायुमण्डल में ओजोन गैस की मात्रा कम है। फिर भी इसकी सघनता (Concentration) 20 से लेकर 35 किलोमीटर तक की ऊँचाई में अधिक पाई जाती है। ओजोन की उत्पत्ति होती रहती है और यह गैसों से मिश्रित होकर नष्ट भी होती रहती है। ओजोन गैस सूर्य से आने वाली अल्ट्रावायलेट किरणों (Ultra-Violet rays) को सोख लेती है। यदि अल्ट्रावायलट किरणें सीधी धरती पर पहुंचने लगे तो मानव, जीव-जन्तुओं में त्वचा कैंसर (Cancer), मोतियाबिंद, पाचन तंत्र में कमजोरी, पौधों की उपज घटना, मत्स्य उत्पादन आदि समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

ओजोन परत ह्रास (Ozone Depletion) की जानकारी सबसे पहले 1970 में उस समय पता चली, जब सुपरसोनिक वायुयान (Supersonic Aircraft) का आविष्कार किया गया। सुपरसोनिक विमानों तथा उर्वरकों से निकलने वाली नाइट्रोजन ऑक्साइड ओजोन की परत को नुकसान पहुंचा रही है। वास्तव में ओजोन परत के ह्रास का मुख्य कारण सीएफसी (CFC) है, जो मुख्यत: रेफ्रिजरेटर, झाग बनाने वाले एजेंट, एयरकंडीशनर, स्प्रे, डिट्रजेंट आदि में उपयोग की जाती है। यह गैस क्षोभमण्डल को पार करके स्ट्रेटोस्फियर में प्रवेश कर जाती है और ओजोन को क्षति पहुंचाती है। इस प्रक्रिया में क्लोरीन का प्रत्येक अणु, ओजोन के 1 लाख अणुओं को नष्ट करने की क्षमता रखता है।

वर्ष 1987 में अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय ने ओजोन संरक्षण तथा सीएफसी के उत्सर्जन में कमी लाने का निश्चय किया कि आगामी 15 वर्षों में क्लोरोफ्लोरो कार्बन के उपयोग पर पूर्ण प्रतिबंध लगाया जाएगा। इसे मांट्रियल प्रोटोकॉल के नाम से जाना जाता है। ओजोन परत के क्षय को रोकने तथा अनुकूलतम उत्पादों के प्रति जागरूकता लाने के लिए 16 सितम्बर को अन्तर्राष्ट्रीय ओजोन दिवस घोषित किया गया। 1985 में दक्षिणी ध्रुव के ऊपर ओजोन में छेद पता चलने के बाद सरकारों ने सीएफसी और हैलोजन गैसों के उत्पादन एवं खपत को कम करने हेतु कड़े उपायों को अपनाया। भारत को भी 4 प्रमुख रसायन CFC, CTC, हैलोजनस और HFC पर रोक लगानी थी, जिसमें 2003 में हैलोजन गैसों को इस्तेमाल से बाहर कर दिया गया। विश्व समुदाय ने ओजोन के क्षय, जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता जैसी चुनौतियों से निपटने हेतु विकासशील देशों को मद्द करने के लिए वैश्विक पर्यावरण सुरक्षा कोष की स्थापना की।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

- **मरूस्थलीकरण (Desertification)**

मरूस्थलीकरण (Desertification) शब्दावली का सबसे पहले उपयोग फ्रांस के विद्वान अबेविली (Abbeville) ने किया था। मरूस्थलीकरण की यूं तो बहुत-सी परिभाषाएं दी जा चुकी हैं, परन्तु सबसे मान्य परिभाषा 1994 में थामस एवं मिडिल्टन (Thomas and Middleton) ने प्रस्तुत की थी। मरूस्थलीकरण के संबंध में, संयुक्त राष्ट्र द्वारा आयोजित 1995 के विश्व सम्मेलन में मरूस्थलीकरण की निम्न परिभाषा पर सहमति हुई थीं। मरूस्थल, आर्द्र मरूस्थल तथा अन्य शुष्क प्रदेशों में जो भूमि जलवायु तथा मानवीय कारणों से प्रभावित हुई हो, मरूस्थलीकरण कहलाती है। वास्तव में वर्तमान समय में मरूस्थलीकरण का मुख्य कारण मानव के द्वारा भूमि, मृदा एवं जंगलों का दुरूपयोग माना जाता है। मरूस्थलीकरण के अधिकतर भाग ऊष्ण तथा आर्द्र ऊष्णकटिबंध में फैले हुए हैं, जिनके क्षेत्रफल में वृद्धि हो रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुमान के अनुसार अफ्रीका का 40 प्रतिशत, एशिया का 33 प्रतिशत तथा लैटिन अमेरिका (Latin America) का 20 प्रतिशत भाग मरूस्थलीकरण की चपेट में है।

विश्व के जिन देशों में मरूस्थलीकरण की समस्या बहुत गंभीर है, उनमें जार्डन, लेबनान, सुमालिया, इथोपिया, दक्षिणी सूडान, चाड, माली, मारितानिया तथा पश्चिमी सहारा प्रमुख हैं। अफ्रीका महाद्वीप के साहेल प्रदेश में प्रायः सूखा पड़ता रहता है। वर्ष 1990 के दशक में अफ्रीका के साहेल क्षेत्र (Sahel Region) में विस्तृत रूप से भारी सूखा पड़ा था, जिसमें हजारों लोगों की मौत हो गई थी। कृषि उत्पादन कम होने के कारण बहुत से लोग कुपोषण का शिकार हो गए थे। एक अनुमान के अनुसार विश्व में माली पहला देश होगा, जिसमें पर्यावरण ह्रास के कारण लगभग पूरी जनसंख्या लुप्त हो जाएगी।

- **जैव विविधता पर संकट**

प्राकृतिक प्रदेश में पाई जाने वाली जंगली तथा पालतू जीव-जन्तुओं एवं पादपों की प्रजातियों की बहुलता को जैव विविधता कहते हैं, अर्थात् - किसी पारिस्थितिक तंत्र में मिलने वाली विभिन्न प्रजाति-जीव, वनस्पति, सूक्ष्म जीव के समूह को जैव विविधता कहा जाता है। जैव विविधता जीवन का आधार है एवं यही पर्यावरण में समय के साथ धीरे एवं तेजी से होने वाले परिवर्तनों के विरुद्ध लड़ने के लिए जैविक पदार्थ उपलब्ध कराने में सक्षम होती है। ऊष्णकटिबंधीय वन इसके सर्वोत्तम उदाहरण हैं।

जैव विविधता शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग प्रसिद्ध कीट वैज्ञानिक ई. ओ. विल्सन ने 1986 में किया था। भू-तल पर जैव विविधता में अलग-अलग स्थानों पर विविधता दिखाई देती है, जिसका प्रमुख कारण स्थलाकृति विन्यास एवं जलवायु की दशाओं में विषमता है। इसी विषमता के आधार पर जैव विविधता को विश्व स्तर पर अनेक क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। विश्व में ऊष्णकटिबंधीय क्षेत्र के स्थलीय एवं जलीय भाग, प्रवाल भित्ति क्षेत्र तथा आर्द्र भूमि जैव विविधता की दृष्टि से अत्यन्त समृद्धशाली है। ऊष्णकटिबंधीय वर्षा वनों में सर्वाधिक जैव विविधता पाई जाती है, इसीलिए इसे जैव विविधता का भण्डार भी कहा जाता है। ऊष्णकटिबंधीय वर्षा वन क्षेत्र विश्व के 13 प्रतिशत भू-भाग पर विस्तृत हैं, परन्तु यहां पर विश्व की 50 प्रतिशत से अधिक जीवों की जातियां विद्यमान हैं।

पर्वतीय क्षेत्रों में उच्चतर चोटियों की तुलना में निम्नतर घाटियों में जैव विविधता सामान्यतः अधिक होती है। प्रवाल भित्तियों में भी जैव विविधता की विशाल राशि है। इन भित्तियों को **समुद्रों के वर्षा वन** के रूप में भी जाना जाता है। विश्व की सबसे बड़ी प्रवाल भित्ति ऑस्ट्रेलिया के पूर्वी तट पर स्थित ग्रेट बेरियर रीफ है। इसके अतिरिक्त पूर्वी हिन्द महासागर तथा पश्चिमी प्रशान्त महासागर के संक्रमण क्षेत्र भी प्रवाल भित्तियों की दृष्टि से सम्पन्न हैं। वर्तमान समय में लगभग 109 देशों में प्रवाल भित्तियां पाई जाती हैं, परन्तु मानवीय क्रियाओं से इन पर संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई है। जल प्रदूषकों के अतिरिक्त समुद्र का बढ़ता तापमान इन पर नकारात्मक प्रभाव डाल रहा है।

जल एवं स्थल के मध्य संक्रमण क्षेत्रों को आर्द्र भूमि कहा जाता है, जिसमें जीवों की संख्या अधिक मात्रा में विद्यमान रहती है। आर्द्र भूमियां भी जैव विविधता के दृष्टिकोण से काफी सम्पन्न हैं। इसके अतिरिक्त पश्चिमी यूरोप, मानसूनी प्रदेश, घास के मैदान आदि भी जैव विविधता सम्पन्न क्षेत्र हैं। भारत में सर्वाधिक जैव विविधता केरल की शांत घाटी (Silent Valley) में पाई जाती है।

जैव विविधता पर्यावरण तथा मानव दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। यह हमारे लिए खाद्य पदार्थों, औषधियों, सौन्दर्यात्मक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ पारिस्थितिक दृष्टि से भी लाभदायक है। जैव विविधता मृदा निर्माण, मृदा अपरदन की रोकथाम, अपशिष्ट का पुनः चक्रण और सस्य परागण द्वारा मानव अस्तित्व का आधार बनी हुई है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

- **जीवों के अस्तित्व पर खतरा (Species Fighting for Survival)**

प्रकृति में विभिन्न जातियों के जीवों की मृत्यु एवं उनके स्थान पर अन्य नवीन जातियों का उद्‌भव एक सतत् प्रक्रिया है, परन्तु विगत शताब्दी में पारिस्थितिक तंत्र पर मानवीय प्रभाव ने जीवों के विलोपन की इस दर में वृद्धि की है। जीवों के इस विलोपन का कारण जैव विविधता पर उत्पन्न होने वाला संकट है। सामान्यत: किसी भी प्रजाति को, जो अपने आवास में 50 वर्षों से नहीं देखी गई है, उसे विलुप्त माना जाता है। वर्तमान में 100 से लेकर 1000 तक विभिन्न जीवों की प्रजातियां एवं उपजातियां प्रतिवर्ष विलुप्त हो रही हैं या फिर पारिस्थितिक दृष्टि से ये अपने जीवन के लिए निरन्तर संघर्ष कर रही हैं। विभिन्न प्रजातियों के विलुप्ति का सबसे प्रमुख कारण इनके प्राकृतिक आवासों का नष्ट होना है। इसके अतिरिक्त पर्यावरण प्रदूषण, वन्य जीवों का अवैध शिकार, बाहरी प्रजातियों का प्रवेश, झूम कृषि, आवासों का बिखराव आदि ऐसे अनेक कारण हैं, जिनके कारण जैव विविधता में निरन्तर ह्रास हो रहा है।

जैव विविधता में होने वाले इस ह्रास के फलस्वरूप अनेक प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं, जैसे - मारीशस में पाए जाने वाले डोडो पक्षी, चीन का लाल पाण्डा आदि। इसके अतिरिक्ति साइबेरियन सारस, डुडोंग (स्तनधारी जीव), सोन चिड़िया, गिद्ध, भारतीय चीता आदि अनेक ऐसी प्रजातियां हैं, जो विलुप्ति की कगार पर हैं। गिद्धों की विलुप्ति का प्रमुख कारण पशु उपचार में प्रयुक्त किया जाना वाला डिक्लोफैनिक रसायन है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (IUCN) द्वारा जारी रेड डाटा बुक एक ऐसी बुक है, जिसमें विश्व में संकटापन प्रजातियों को शामिल किया जाता है। IUCN का प्रतीक चिह्न लाल पाण्डा है, जो विलुप्त हो गया है। रेड डाटा बुक के अनुसार भारत में वैश्विक रूप से संकटग्रस्त जीव-जन्तुओं की 413 प्रजातियां हैं, जो विश्व की कुल संकटग्रस्त प्राणियों की प्रजातियों का 4.9 प्रतिशत है। मानवीय प्रजातियों में ओंगे, सौम्पेन, सेन्टिनल तथा जारवा अण्डमान-निकोबार की ऐसी प्रजातियां हैं, जिनकी संख्या बहुत कम रह गई हैं। ऐसे स्थान जहां पर प्रजातियों की पर्याप्तता तथा स्थानीय जातियों की अधिकता पाई जाती है, लेकिन साथ ही इन जीव-जातियों के अस्तित्व पर निरन्तर संकट बना हुआ है। ऐसे स्थलों को जैव विविधता के दृष्टिकोण से संवेदनशील स्थल या हॉट स्पॉट कहा जाता है। '**हॉट स्पॉट**' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग पारिस्थितिकविद नार्मन मायर्स ने 1988 में किया था। विश्व में चिह्नित कुल 25 हॉट स्पॉट में से 2 भारत में स्थित हैं। भारत का प्रथम हॉट स्पॉट पश्चिमी घाट है, जबकि दूसरा हॉट स्पॉट पूर्वी हिमालय है, जिसका विस्तार म्यांमार तक है।

- **प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि**

वैश्विक जलवायु परिवर्तन के कारण समुद्री तूफानों की बारंबारता में वृद्धि होगी, जिसके परिणामस्वरूप तटीय क्षेत्रों में जान-माल की क्षति होगी। इसके अतिरक्त अलनीनो की बारंबारता में भी बढ़ोतरी होगी, जिससे एशिया, अफ्रीका तथा ऑस्ट्रेलिया महाद्वीपों में सूखे की स्थिति उत्पन्न होगी, वहीं दूसरी तरफ उत्तरी अमेरिका में बाढ़ जैसी आपदा का प्रकोप होगा। दोनों ही स्थितियों में कृषि उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

- **जलाभाव की समस्या**

तापवृद्धि के कारण वाष्पीकरण तथा वाष्पोत्सर्जन की दर में अभूतपूर्व वृद्धि होगी। परिणामस्वरूप मृदा जल के साथ ही जलाशयों में जल की कमी होगी, जिससे फसलों को पर्याप्त जल उपलब्ध न होने के कारण उनकी पैदावार प्रभावित होगी। भारत जैसे ऊष्णकटिबंधीय देश में जलाशयों में जल की कमी के कारण सिंघाड़े तथा मखाने की खेती पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। इसके अतिरिक्त मत्स्य पालन तथा उत्पादन पर भी प्रभाव पड़ेगा।

- **बीमारियों में वृद्धि**

जलवायु परिवर्तन से मौसम में अस्थिरता आती है। कभी भीषण गर्मी पड़ती है, तो कभी भीषण ठंड। कभी आर्द्रता बेहद बढ़ जाती है, तो कभी शुष्कता बहुत बढ़ जाती है। मौसम के ये उतार-चढ़ाव उन जीवाणुओं व वायरसों को जन्म देते हैं, जो संक्रामक बीमारियां फैलाते हैं। चूंकि ऊष्णकटिबंधीय क्षेत्रों का तापमान अधिक होता है, अत्एव यहां वायरस आसानी से पनपते हैं और इन क्षेत्रों में बीमारियां भी ज्यादा फैलती हैं। मौसम में जलवायु परिवर्तन के कारण होने वाले उतार-चढ़ाव से मुख्यरूप से डेंगू, मलेरिया, प्लेग व पीलिया जैसी बीमारियों का प्रकोप बढ़ता है। चर्म रोगों में भी इजाफा होता है तथा लोग श्वसन संबंधी बीमारियों की चपेट में आ जाते हैं। ग्रीन हाऊस गैसों के प्रभाव के कारण पृथ्वी 15 से 50 किमी की ऊँचाई पर स्थित ओजोन की सतह प्रभावित हो रही है और सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणों का अवशोषण कम हो रहा है। इस कारण त्वचा संबंधी बीमारियां तेजी से बढ़ रही हैं।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

- **वनों का ह्रास**

बढ़ती हुई जनसंख्या एवं औद्योगिकरण तथा उपभोक्तावाद के कारण जंगलों को भारी मात्रा में काटा जा रहा है। वनों की कटाई विशेषकर ऊष्णकटिबंध के जंगलों में की जा रही है। कृषि भूमि के क्षेत्रफल में वृद्धि, लकड़ी-ईंधन की बढ़ती मांग, टिंबर तथा कृषि आधारित उद्योगों के लिए बढ़ते हुए कच्चे माल की मांग तथा मांसाहारी आहार की पर्वतों के कारण जंगलों को तीव्र गति से काटा जा रहा है। जंगलों को काटने से कागज, लुग्दी, फर्नीचर तथा लकड़ी कोयला प्राप्त होता है, जिससे राष्ट्र को आय होती है, परन्तु वनों के काटने के दूरगामी विपरीत परिणाम भी होते हैं। उदाहरणार्थ - वनों के काटने से मृदा अपरदन में वृद्धि होती है, बाढ़ एवं सूखे की बारंबारता में वृद्धि होती हैं, नदियों के रास्ते में मिट्टी जमा हो जाती है, जिससे नदियों का रास्ता उथला हो जाता है और बाढ़ की संभावना बढ़ जाती है।

यद्यपि जंगलों के प्रति मानव-समाज में जागरूकता बढ़ रही है, फिर भी संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रकाशित आंकड़ों से पता चलता है कि वनों के क्षेत्रफल में निरंतर कती हो रही है। एफ. ए. ओ. के प्रकाशित आंकड़ों के अनुसार वर्ष 1980 से 1995 के 15 वर्षों के समय में लगभग 200 मिलयन हेक्टयर क्षेत्रफल के जंगल काटे जा चुके हैं। सामाजिक पौधारोपण के द्वारा इस नुकसान की किसी हद तक भरपाई की जा चुकी है, परन्तु पूर्णरूप से नहीं। वनों की निरंतर कटाई का पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। यह प्रतिकूल प्रभाव स्थानीय तथा विश्व स्तर पर देखा जा सकता है।

❒ पर्यावरण संरक्षण विधियां, नीतियां और नियामक ढांचा

(Environment Protection Laws, Policies and Regulatory Frameworks)

पर्यावरणीय कानून का तात्पर्य ऐसे नियमों से है, जिसका मुख्य लक्ष्य वातावरण का संरक्षण है। यह स्थानिक, प्रादेशिक, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय हो सकता है। पर्यावरणीय कानून भी संकल्पना में केन्द्रीय तत्व पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण (मानवजनित) तथा प्राकृतिक संसाधनों (जैसे - वन एवं वनजीव आदि) का संरक्षण है।

- **स्टॉकहोम सम्मेलन (1972)**

5 जून, 1972 में पर्यावरण सुरक्षा हेतु विश्वव्यापी स्तर पर प्रथम प्रयास किया गया था। संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में इस वर्ष स्टॉकहोम में एक सम्मेलन आयोजित हुआ और संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम का आरंभ हुआ। इस सम्मेलन में ही 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस घोषित किया गया। इस सम्मेलन में पर्यावरण संकट को दूर करने हेतू 25 सूत्री घोषणापत्र तैयार किया गया।

- **पृथ्वी शिखर सम्मेलन (1992)**

स्टॉकहोम सम्मेलन की 20वीं वर्षगांठ मनाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने ब्राजील की राजधानी रियो-डी जेनरो में 1992 में पर्यावरण और विकास सम्मेलन आयोजित किया। इसे अर्थ सम्मिट या प्रथम पृथ्वी शिखर सम्मेलन भी कहा जाता है। इसमें सम्मिलित देशों ने टिकाऊ विकास के लिए व्यापक कार्रवाई योजना एजेंडा 21 स्वीकृत किया। सम्मेलन में सहमति के महत्वपूर्ण बिन्दु निम्नलिखित थे -

1) ऊर्जा संरक्षण तथा ऊर्जा का सदुपयोग करके प्रदूषण की वृद्धि में कमी करना।
2) जलवायु परिवर्तन को कम करना।
3) स्ट्रोपोसफियर की ओजोन परत का संरक्षण (Protection of stratospheric Ozone Depletion) करना।
4) अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रदूषण नियंत्रण करना।
5) स्थलीय तथा सागरीय जल संसाधनों का संरक्षण करना।
6) मृदा अपरदन तथा बढ़ते हुए मरूस्थलीकरण को रोकना।
7) वन ह्रास (Deforestation) को रोकना।
8) रेडियोधर्मी अपशिष्ट (Ratio active waste) का उचित प्रबंध करना।
9) खतरनाक रसायनिक पदार्थों का सुरक्षित ढंग से आयात-निर्यात करना।
10) संपति एवं वन के असमान वितरण को कम करना।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

पृथ्वी सम्मेलन के मध्य दो कन्वेंशन को स्वीकार किया गया, जैव विविधता पर अभिसमय (The Converntion on Bio Diversity - CBD) एवं फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज (The Fremework Convention on Climate Change - UNFCC)। इन्हें वैधानिक रूप में बाध्यकारी प्रबंधन के रूप में स्वीकार किसा गया। इसने 'Forest Principles' पर भी एक दस्तावेज तैयार किया। इसमें एक समझौते पर भी हस्ताक्षर हुआ, जिसमें सरकारों के द्वारा यह वादा किया गया कि उनके द्वारा लोगों की भूमि पर कुछ भी ऐसे कार्य नहीं किए जाएंगे, जिनसे पर्यावरण के लिए खतरा उत्पन्न हो तथा जो सांस्कृतिक दृष्टि से अनुचित हो। सम्मेलन में जंगलों के संरक्षण के मुद्दे पर भी विवाद शुरू हुआ, क्योंकि विकासशील देशों की विशेष रूप से जी-77 की यह मांग थी कि जंगलों के संरक्षण के कारण उत्पन्न क्षतिपूर्ति को दूर करने के लिए उन्हें आर्थिक सहायता प्राप्त हो। अंत में रियो सम्मेलन 1992 पर्यावरण पर वैश्विक चिन्ता का एक ज्वलन्त अभिव्यक्ति बन गया। पहली बार मानव समुदाय के लिए पर्यावरण की रक्षा के लिए गंभीर रूप से कदम उठाने का वादा किया। एजेंडा-21 तथा समान, किन्तु विभेदकारी उत्तरदायित्व (सी. बी. डी. आर.) इसकी महत्वपूर्ण उपलब्धियां हैं। 1992 में ही 'कॉन्फ्रेंसेज ऑफ द पार्टीज' की इस प्रकार आधारशिला रखी गई थीं। इस अभिसमय के आधीन राज्य पार्टियां (State Parties) 2 श्रेणियों - अनुबद्ध राज्य (Annexture State) और अनुबद्ध इतर राज्य (Non-Annexture State) के अधीन आते हैं।

1) **एनेक्स-1 देश (Annex I Countries)** - इस समूह में औद्योगिक देश तथा संक्रमणशील अर्थव्यवस्थाएं (Economies in Transition) शामिल हैं। इस समूह में 41 देश शामिल हैं तथा यूरोपीय यूनियन भी एक सदस्य है।

2) **एनेक्स-2 देश (Annex -2 Countries)** - ये एनेक्स-1 देशों के समूह के बीच ही एक उप-समूह का सृजन करते हैं। इसमें विकसित देश शामिल हैं किन्तु इसमें संक्रमणशील अर्थव्यवस्थाएं (Economies In Transition) भी शामिल हैं। ये वे विकसित राष्ट्र हैं जो विकासशील अर्थव्यवस्था को क्षतिपूर्ति की रकम चुकाते हैं। यह रकम विकासशील देशों की ओर यूएनएफ सीसीसी मैकेनिज्म के तहत् हस्तांतरित होता है। साथ ही इनके द्वारा विकासशील देश तथा संक्रमणशील अर्थव्यवस्थाओं को तकनीकी का हस्तान्तरण भी किया जाता है।

3) **नन-एनेक्स देश (Non-Annex Countries)** - इसमें विकासशील देश शामिल होते हैं। विकासशील देशों को कार्बन उत्सर्जन की कटौती की तब तक जरूरत नहीं है, जब तक विकसित देश उन्हें आवश्यक फण्ड एवं तकनीकी प्रदान न करें।

- **क्योटो सम्मेलन (1997)**

संयुक्त राष्ट्र की पहल पर ग्लोबल वार्मिंग एवं जलवायु परिवर्तन की चुनौती से निपटने के लिए 1992 में UNFCC अस्तित्व में आया। UNFCC का तीसरा COP सम्मेलन 1997 में जापान के क्योटो नामक स्थान पर आयोजिम हुआ, जिसे क्योटो सम्मेलन के नाम से जाना जाता है। यह एक कानूनी बाध्यकारी समझौता है। इसमें ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन में कटौती के मुद्दे पर वैधानिक सीमा तय की गई, जिसमें 150 देशों ने हिस्सा लिया था। इस सम्मेलन में विकसित तथा विकासशील देशों की कार्य योजना, समयावधि तथा ग्लोबल वार्मिंग को रोकने के लिए उठाए गए कदम के लिए खर्च की आपूर्ति के मुद्दे पर विवाद बना रहा।

विकसित देशों ने इस बात पर चिंता जताई कि जब भारत एवं चीन जैसे बड़े देशों का औद्योगीकरण होगा, तो इससे ग्लोबल वार्मिंग की समस्या बढ़ेगी। दूसरी तरफ चीन एवं भारत का तर्क यह था कि गरीबी उन्मूलन के लिए तीव्र आर्थिक विकास उनकी जरूरत है, अत: उनके आर्थिक विकास पर अवरोध नहीं लगाया जाना चाहिए। उनका यह भी कहना था कि अगर प्रतिव्यक्ति उत्सर्जन के आधार पर देखा जाए, तो उनके द्वारा किया गया कार्बन उत्सर्जन अभी-भी बहुत ही कम है। यह स्वीकार किया गया कि पर्यावरण प्रदूषण के लिए औद्योगीकरण उत्तरदायी है।

अंत में यह निर्णय लिया गया कि यूरोपीय यूनियन, यूएसए तथा जापान 2008-12 के बीच कार्बन उत्सर्जन में कटौती कर उसे 1990 के वर्ष के स्तर पर ले आए। उर्त्सजन कटौती के इस लक्ष्य को हासिल करने की दिशा में कार्बन ट्रेडिंग की चर्चा की गई, जिसके तहत् औद्यौगिक राष्ट्र आपस में कार्बन क्रेडिट की खरीद-बिक्री कर सकते है। 1997 की अनुमोदित क्योटो संधि में 2002 में संशोधन कर अंतिम रूप दिया गया। रूस द्वारा स्वीकृति के फरवरी 2005 को क्योटो प्रोटोकॉल लागू किया गया। 2008 में भारत सहित 183 देशों ने इस संधि को अपनी मंजूरी प्रदान की।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

इस प्रोटोकॉल में विकासशील देशों को शर्तों में कुछ छूट दी गई है, जिससे भारत को ग्रीन टेक्नोलॉजी हस्तान्तरण एवं विदेशी निवेश तथा कार्बन व्यापार के क्षेत्र में फायदा हो सकता है। भारत यद्यपि प्रतिव्यक्ति कार्बन उत्सर्जन के मामले में काफी पीछे है, फिर भी वह अपनी जिम्मेदारियों से भली भाँति वाकिफ है। साथ ही उसका दृष्टिकोण है कि इसके लिए जिम्मेदार विकसित देशों को इस दिशा में ज्यादा प्रयास करने की जरूरत है।

क्योटो प्रोटोकॉल में लक्ष्य रखा गया कि कार्बन उत्सर्जन को 2012 तक 5.2 प्रतिशत की कटौती करके उसे 1990 तक लाया जाएगा, किन्तु यह लक्ष्य पूरा नहीं हो सका। इस प्रोटोकॉल को गहरा आघात उस समय लगा, जब कनाडा ने स्वयं को इससे अलग कर लिया। इस प्रोटाकॉल का स्थान लेने के लिए वैश्विक स्तर पर समझौता जारी है, पर विकासशील व विकसित देशों के बीच मतभेद के कारण किसी सर्वमान्य समझौते पर नहीं पहुंचा जा सका है। बाली तथा कोपेनहेगेन में भी विचार-विमर्श किया गया।

- **जोहान्सबर्ग शिखर सम्मेलन 2002**

सितम्बर, 2002 में जोहान्सबर्ग में दूसरे पृथ्वी सम्मेलन के नाम से चर्चित सतत् विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में 1992 में आयोजित पृथ्वी सम्मेलन में लिए गए निर्णयों की प्रगति की समीक्षा की गई। इसमें भी एजेंडा-21 पर विचार-विमर्श हुआ। इस सम्मेलन का उद्देश्य भी सतत् विकास को हासिल करना था।

- **नुसा दुआ सम्मेलन 2007**

इंडोनेशिया के बाली द्वीप के नुसा दुआ में 2007 को जलवायु परिवर्तन पर वैश्विक सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें 190 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसमें 2012 में समाप्त हो रहे क्योटो प्रोटकॉल के स्थान पर नई संधि के बारे में विचार किया गया।

- **कोपेन हेगन शिखर सम्मेलन 2009**

डेनमार्क की राजधानी कोपेन हेगन में जलवायु परिवर्तन को लेकर 18 दिसम्बर, 2009 को हुआ अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन (कोप-15) बिना किसी बाध्यकारी समझौते के समाप्त हो गया।

- **रियो+20 सम्मेलन 2012**

संयुक्त राष्ट्र सतत् विकास सम्मेलन रियो+20 का आयोजन ब्राजील के रियो डी जेनेरियो में 20- 22 जून 2012 को आयोजित हुआ। चूंकि इस सम्मेलन का आयोजन रियो में वर्ष 1992 में आयोजित पृथ्वी सम्मेलन के 20 वर्ष बाद किया गया था, इसलिए इसका नाम रियो+20 रखा गया था। रियो+20 सम्मेलन के बाद एक संयुक्त घोषणा-पत्र पर सहमति व्यक्त की गई, जिसे **द फ्यूचर वी वांट** नामक शीर्षक से जारी किया गया। हालांकि विश्व के प्रमुख नेता 2 महत्वपूर्ण मांगों पर सहमत हुए हैं, उनमें से एक **प्रौद्योगिकी हस्तान्तरण,** जबकि दूसरा **वित्त** से जुड़ा हुआ है। यह रियो सम्मेलन में भारत की सफलता के तौर पर देखा जा रहा है। ये दोनों प्रस्ताव भारतीय थे तथा इसे समूह 77 देशों का जोरदार समर्थन मिला।

- **लीमा शिखर सम्मेलन 2014**

इस सम्मेलन का आयोजन पेरू की राजधानी लीमा में दिसम्बर 2014 को हुआ। इस सम्मेलन (कोप-20) में UNFCC की सभी पार्टियों ने मिलकर राष्ट्रों के अपेक्षित योगदान पर सहमति व्यक्त की। इसके अलावा ग्रीन क्लाइमेंट फण्ड के लिए 10 बिलियन डॉलर के योगदान की बात कही गई। चीन और अमेरिका ने 2020 के पश्चात् अपने कार्बन उत्सर्जन के लक्ष्य को निर्धारित किया।

- **रामसर सम्मेलन**

रामसर सम्मेलन (औपचारिक रूप से अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की आर्द्रभूमि का सम्मेलन एवं विशेष रूप से जलपक्षी पर्यावास के रूप में) आर्द्रभूमि के सतत् उपयोग और संरक्षण, आर्द्रभूमि के मूलभूत पारितंत्रीय कार्य और इसके आर्थिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और पुनर्उत्पादक मूल्य की पहचान के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय संधि हैं। इसका नामकरण ईरान के शहर रामसर से हुआ है, जहां इस अभिसमय पर 1971 में हस्ताक्षर हुआ। भारत के 26 स्थलों को रामसर स्थल माना गया है। 6 और आर्द्रभूमियों को रामसर स्थल बनाने की कवायद जारी है। भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय आर्द्रभूमि निदेशकमण्डल में प्रतिनिधित्व किया और अन्तर्राष्ट्रीय आर्द्रभूमि निदेशक परिषद् का 2 बार सदस्य निर्वाचित हुआ। परिषद् रामसर समझौते का सहयोगी संगठन है। भारत अन्य हिमालय देशों के साथ हिमालय प्रयासों में साझेदार है। भारतीय शिष्टमण्डल ने 2012 में रोमानिया के बुखारेस्ट में हुई रामसर सम्मेलन सीओपी-11 बैठक में भाग लिया और सम्मेलन में पारित 22 प्रस्तावों में हस्तक्षेप किया।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

❐ पर्यावरण संरक्षण संबंधी भारतीय विधान

सरकारी नीति के निदेशात्मक सिद्धान्तों में से राज्य को एक निर्देश यह दिया गया है कि उसे पर्यावरण की सुरक्षा एवं उसके सुधार का कार्य करना है। अनुच्छेद 48A में कहा गया है कि राज्य का प्रयास होगा कि वह पर्यावरण की सुरक्षा करे एवं उसका सुधार करे तथा देश के वनों एवं वन्य जीवन को सुरक्षा प्रदान करें। भारत में पर्यावरण विभाग की 1980 में स्थापना हुई, ताकि देश का पर्यावरण स्वस्थ बना रहे। संवैधानिक प्रावधानों को अनेक अधिनियमों एवं नियमों का सहारा प्राप्त है। हमारे अधिकतर पर्यावरण विधान संसद द्वारा या राज्य विधान सभाओं द्वारा अधिनियम के रूप में बनाए जाते हैं। अधिनियमों का एक संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है –

1) **वन्य जीव सुरक्षा अधिनियम, 1972 (Wildlife Protection Act, 1972)** – भारत सरकार ने 1972 में वन्यजीव संरक्षण अधिनियम पारित किया, जिसका उद्देश्य वन्य प्राणियों को सुरक्षा एवं देखभाल हेतु राष्ट्रीय पार्कों एवं अभ्यारण्यों की स्थापना करना था। इसमें राज्यों के लिए वन्य जीवन प्रबंध के ढांचे और वन्य जीवन प्रबंध हेतु पदों की व्यवस्था करना तथा सलाहकार बोर्ड की स्थापना करने आदि का प्रावधान है। इसमें प्राणियों को विनाश के खतरे की गंभीरता के अनुसार अधिसूचित किया गया है। एक से चार अनुसूची में दर्ज सभी पशुओं के शिकार पर प्रतिबंध है, अनुसूची 6 में दर्ज पौधों का संरक्षण आवश्यक बताया गया है।

उपरोक्त अधिनियम का वर्ष 2002 में किया गया संशोधन और भी सख्त है। यह स्थानीय जनता द्वारा संसाधनों के व्यवसायिक उपयोग पर रोक लगाता है। परितंत्रों का संरक्षण सुनिश्चित करेन हेतु वनों के उत्पादों की पुनर्परिभाषा दी गई है। सामुदायिक रिजर्व क्षेत्र की स्थापना जैसी नई धारणाएं सामने रखी गई हैं। 42वें संविधान संशोधन (1976) अधिनियम के द्वारा वन्य जीवों के संरक्षण को राज्य सूची से हटाकर समवर्ती सूची में रखा गया। अधिनियम का उद्देश्य तेजी से लुप्त हो रहे वन्य जीवों के संरक्षण तथा प्रबंधन को सुनिश्चित करना था। इसमें वन्य जीवों के शिकार तथा उनसे निर्मित वस्तुओं के व्यापार को निषिद्ध करने में प्रावधान किए गए।

2) **वन सुरक्षा अधिनियम, 1980 (Forest Protection Act, 1980)** – भारत सरकार ने 1980 में वन संरक्षण अधिनियम पारित किया, जिसका 1988 में संशोधन किया गया। इससे पहले तक देश में 1927 का भारतीय वन अधिनियम लागू था। वन संरक्षण अधिनियम ने सरकार और वन विभाग को आरक्षित वन बनाने और इनका प्रयोग केवल सरकारी कामों के लिए करने का अधिकार दिया। संरक्षित वन भी बनाए गए, जिसमें जनता द्वारा संसाधनों के उपयोग पर नियंत्रण लगाए गए।

भारत की पहली वन नीति 1952 में बनाई गई थी। तब से लेकर 1988 के संशोधन तक वनों का इतना विनाश हुआ था कि वनों और उनके उपयोग पर एक नई नीति बनाना आवश्यक हो गया था। पहले की वन नीतियों का उद्देश्य केवल राजस्व संग्रह हुआ करता था, किन्तु बाद में यह स्पष्ट हो गया कि वनों का संरक्षण अनेक अन्य कार्यों के लिए भी आवश्यक है, जैसे – मृदा और जल का संरक्षण, जैव विविधता का संरक्षण आदि। नए नीतिगत ढांचे न अन्य कार्यों के लिए वनों के उपयोग की संभावना काफी कम कर दी है, इसमें एक प्राकृतिक धरोहर के रूप में वनों के संरक्षण को भी चारे और अन्य वन्य उत्पादों के बारे में स्थानीय जनता की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखा गया है।

3) **पर्यावरणीय (सुरक्षा) अधिनियम, 1986 (Enviroment Protection Act, 1986)** – जून, 1972 में स्टाकहोम संयुक्त राष्ट्र मानव पर्यावरण सम्मेलन द्वारा जारी घोषणा को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने 1986 का पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम बनाया, जो एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

देश में मौजूद कानून विशेषज्ञ प्रकार के प्रदूषणों या विशेष श्रेणियों के घातक पदार्थों पर केंद्रित थे। पर्यावरण से उनका अप्रत्यक्ष संबंध सिर्फ उन कानूनों के माध्यम से था, जो भूमि उपयोग को नियंत्रित करते थे या राष्ट्रीय पार्कों, अभ्यारण्यों और वन्यजीवन को सुरक्षा देते थे। पर्यावरण संबंधी भावी खतरों को रोकने हेतु आवश्यकता ऐसे प्राधिकरण की थी, जो पर्यावरण सुरक्षा की दीर्घकालिक आवश्यकताओं का अध्ययन, नियोजन और क्रियान्वयन करें तथा पर्यावरण संबंधी आकस्मिक खतरों से निपटने की व्यवस्था करे। इन सब बातों को ध्यान में रखकर पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम बनाया गया।

इसे पारित करने का मुख्य उद्देश्य संयुक्त राष्ट्र द्वारा पर्यावरण संरक्षण की दिशा में किए गए प्रयासों को भारत में विधि बनाकर लागू करना है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

a) प्रदूषण प्रावधानों को मात्र जल व वायु तक सीमित न कर इनका विस्तार किया गया है।

b) खतरनाक प्रदूषण को रोकने के लिए अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन करने वालों के सख्त दण्ड के प्रावधान किए गए हैं।

c) प्रदूषण फैलाने वाली फैक्ट्रियों, संकटमय पदार्थों तथा पर्यावरणीय आपदाओं को स्पष्टत: परिभाषित किया गया है।

4) जैविक विविधता अधिनियम, 2002 (Biological Diversity Protection Act, 2002) - इस अधिनियम को 5 फरवरी, 2003 को राष्ट्रपति ने हस्ताक्षर कर अनुमोदित किया।

a) यह अधिनियत जैविक विविधता, उसके घटकों के सतत् उपयोग को संरक्षण प्रदान करने के लिए, जैविक संसाधनों के उपयोग और ज्ञान से प्राप्त लाभ के निष्पक्ष व न्यायोचित बंटवारे के लिए और उससे संबंधित आनुषंगिक मामलों के लिए प्रावधान करता है।

b) भारत जैविक विविधता और उससे संबंधित पारंपरिक व समकालीन ज्ञान प्रणाली में भी धनी है।

c) भारत 5 जून, 1992 को रियो-डे जनेरियो में जैविक विविधता पर संयुक्त राष्ट्र अभिसमय में हस्ताक्षर करने वाला सदस्य देश भी है।

d) इसमें किए गए प्रावधानों के अनुसार यह अधिसमय 29 दिसम्बर, 1993 से प्रभावी हुआ है।

e) यह अभिसमय प्रत्येक राज्य को उसके जैविक संसाधनों पर सम्प्रभु अधिकार की पुष्टि करता है।

f) इसमें कहा गया है कि अभिसमय का मुख्य उद्देश्य जैविक विविधता का संरक्षण इसके घटकों के सतत् उपयोग और आनुवांशिक संसाधनों के उपयोग से उत्पन्न होने वाले लाभों का निष्पक्ष और न्यायोचित बंटवारा है।

5) तटीय विनियमन क्षेत्र (Coastal Regulation Zone - CRZ) -

a) समुद्र, खाड़ी, एस्चुअरी, क्रीक, नदियों के तटीय फैलाव, जो उच्च ज्वार रेखा (High Tide Line - HTL) से 500 मीटर तक ज्वारीय क्रिया द्वारा प्रभावित होती है और उच्च ज्वार रेखा तथा निम्न ज्वार रेखा (Low Tide Line - HTL) के बीच के क्षेत्र को 19 फरवरी, 1991 को तटीय विनियमन क्षेत्र घोषित किया गया।

b) तटीय विनियमन क्षेत्र (CRZ) 1991 की अधिसूचना, जिसमें समय-समय पर संशोधन किया गया, जिसका उद्देश्य भारत में तटीय क्षेत्रों का संरक्षण करना है।

c) भारत ने तटीय विनियमन क्षेत्र अधिसूचना को प्रभावी बनाने के लिए संस्थागत प्रणाली, जैसे - राष्ट्रीय तटीय क्षेत्र प्रबंधन प्राधिकरण (National Coastal Zone Management Authority - NCZMA) और राज्य तटीय क्षेत्र प्रबंधन प्राधिकरण (State Coastal Zone Management Authority - SCZMA) का निर्माण किया है।

6) अनुसूचित जनजाति और अन्य परम्परागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 (Schedule Tribes and other Forest Dwellers Act, 2006) -

a) इस अधिनियम का अनुमोदन 29 दिसम्बर, 2006 को हुआ।

b) वन में निवास करने वाली ऐसी अनुसूचित जनजातियों और अन्य परम्परागत निवासियों के, जो ऐसे वनों में पीढ़ियों से निवास करते हैं, किन्तु उनके अधिकारों को अभिलिखित नहीं किया जा सका है, उनके वन अधिकारों को मान्यता देने एवं निहित करने के लिए यह अधिनियम बनाया गया।

c) वन में निवास करने वाली अनुसूचित जनजातियों और अन्य परम्परागत वन निवासियों के मान्यता प्राप्त अधिकारों में दीर्घकालीन उपयोग के लिए जिम्मेदारी और प्राधिकार, जैव विविधता का संरक्षण और पारिरिसतिकी संतुलन को बनाए रखना और वन में निवास करने वाली अनुसूचित जनजातियों और वन्य परम्परागत वन निवासियों को जीविका तथा खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करते समय वनों की संरक्षण अवस्था को सुदृढ़ करना भी सम्मिलित है।

d) औपनिवेशिक काल के दौरान तथा स्वतंत्र भारत में राज्य वनों को समेकित करते समय उनकी पैतृक भूमि का वन अधिकारों और उनके निवास को पर्याप्त रूप से मान्यता नहीं दी गई। वन निवासियों के प्रति ऐतिहासिक अन्याय हुआ है, जो वन पारिस्थितिकी प्रणाली को बचाने और बनाए रखने के लिए अभिन्न अंग है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

e) यह आवश्यक हो गया है कि वन में निवास करने वाली अनुसूचित जनजातियों और अन्य परम्परागत वन निवासियों की, जिसके अन्तर्गत वे जनजातियां भी हैं, जिन्हें राज्य के विकास से उत्पन्न हस्तक्षेप के कारण अपने निवास दूसरी जगह बनाने के लिए मजबूर किया गया था। लंबे समय से चली आ रही भूमि संबंधी असुरक्षा तथा वनों में पहुंच के अधिकारों पर ध्यान दिया जाए।

7) जल (प्रदूषण नियंत्रण और निवारण) अधिनियम, 1974 [The Water (Prevention and Control of Pollution) Act, 1974]

a) जल प्रदूषण के निवारण एवं नियंत्रण हेतु यह अधिनियम, 1974 में बनाया गया।

b) इसके तहत् जल के स्वास्थ्य-प्रदत्ता को बहाल करने और उसे बनाए रखने का प्रावधान है।

c) इसमें अधिनियम में वर्ष 1988 में संशोधन किया गया।

8) जल (प्रदूषण नियंत्रण और निवारण) उपकर अधिनियम, 1977 [The Water (Prevention and Control of Pollution) Act, 1977]

a) यह कानून 1977 में अधिनियमित किया गया।

b) इसके अन्तर्गत कुछ निश्चित प्रकार के औद्योगिक गतिविधियों के संचालन के लिए किए गए जल के उपभोग पर उपकर के संग्रह का प्रावधान किया गया है।

c) यह उपकर संसाधनों को बढ़ाने के दृष्टिकोण से एकत्र किया जाता है।

d) यह अधिनियम के तहत् जल प्रदूषण नियंत्रण एवं निवारण के लिए केन्द्रीय बोर्ड और राज्य बोर्ड का गठन किया गया है।

e) इस अधिनियम का अंतिम संशोधन वर्ष 2003 में हुआ।

9) वायु (प्रदूषण नियंत्रण और निवारण) अधिनियम, 1981 [The Air (Prevention and Control of Pollution) Act, 1981]

a) यह अधिनियम वायु प्रदूषण के नियंत्रण, रोकथाम और कमी के लिए बनाया गया है।

b) यह इससे संबंधिम बोर्ड की शक्ति और कार्य को भी निर्धारित करता है।

c) जून, 1972 में स्टाकहोम में आयोजित संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण हेतु उचित कदम उठाने के लिए निर्णय लिया गया था।

d) सम्मेलन में अन्य बातों के अलावा वायु गुणवत्ता और वायु प्रदूषण नियंत्रण भी शामिल था।

e) इस सम्मेलन में भारत द्वारा भी हिस्सा लिया गया था।

f) इस सम्मेलन के निर्णय को लागू की आवश्यकता बढ़ रही थी, इस कारण इस कानून निर्माण किया गया।

g) 1981 में बनाए गए इस कानून में वर्ष 1987 में संशोधन किया गया।

❐ पर्यावरण संरक्षण संबंधी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं

◆ इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेंट चेंज (IPCC)

विश्व मौसम संगठन तथा संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम द्वारा मिलकर 1988 में इस संगठन का गठन किया गया था। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य जलवायु परिवर्तन के धरती और इसके वासियों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना है। अध्ययन के बाद यह अपनी रिपोर्ट संयुक्त राष्ट्र को सौंपता है।

◆ यूनाइटेड नेशन फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज (UNFCCC)

जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र रूपरेखा अभिसमय (United Nations Framework Convention on Climate Change) एक अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय संधि है। इसके तहत् यूएनएफसीसीसी एक अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय संधि है, जिस पर 1992 के पर्यावरण एवं विकास सम्मेलन (पृथ्वी सम्मेलन) में सहमति बनी थी। यह सम्मेलन रियो-डि जेनेरियो (ब्राजील) में हुआ था।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

❖ **उद्देश्य**

वातावरण में हरित गृह गैस के सांद्रता को स्थिर करना, जो जलवायु प्रणाली में खतरनाक मानवीय हस्तक्षेप को रोक सके।

❖ **विवरण**

यूएनएफसीसीसी एक अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय संधि है। इसका निर्माण पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में किया गया, जिसे अनौपचारिक रूप से पृथ्वी शिखर सम्मेलन के नाम से जाना जाता है, जो 14 जून, 1992 के मध्य आयोजित किया गया था। यह संधि हरितगृह गैस उत्सर्जन हेतु देशों के लिए कोई बाध्यकारी सीमा और कोई प्रवर्तन तंत्र नहीं तय करता है। इस संदर्भ में संधि को कानूनी रूप से गैर-बाध्यकारी माना जाता है। यह संधि एक अन्तर्राष्ट्रीय बाध्यकारी संधि हेतु मंच प्रदान करता है। मार्च, 2014 तक इसके 196 सदस्य या पार्टी रही।

वर्ष 1995 से इसके सदस्यों का वार्षिक सम्मेलन (COP) का आयोजन किया जा रहा है, जो जलवायु परिवर्तन से निपटने में प्रगति का आकलन करता है। 1997 में क्योटो बनाया और स्थापित किया गया, जिसमें विकसित देशों को अपने हरित गृह गैस उत्सर्जन को कम करना था। 2010 के कैनकन समझौत में भू-तापन को पूर्व-औद्योगिक स्तर से 2°C (3.6°F) तक भविष्य में कम करना है। कोप-20 (COP) को लीमा , पेरू में 1 से 20 दिसम्बर, 2014 के मध्य आयोजित किया गया तथा 2015 में कोप-21 का आयोजन 30 नवम्बर से 11 दिसम्बर के मध्य पेरिस, फ्रांस में किया जाएगा।

◆ **ग्रीन-पीस**

अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय संगठन के रूप में इसकी स्थापना 1971 में कनाडा में की गई थी। यह संगठन अपने अभियानों के लिए समुद्री जहाज रेनबो वारियर का प्रयोग करता है। आसियान सदस्यों के लिए यह जहाज 1977 में प्रयुक्त करना शुरू किया गया था। इस संगठन का प्रमुख उद्देश्य विश्व के राष्ट्रों की ऐसी सरकारी एवं औद्योगिक नीतियों को प्रकाश में लाना तथा उनमें परिवर्तन करना है, जो पृथ्वी पर पर्यावरण एवं प्रकृति के समक्ष चुनौतियां प्रस्तुत करते हैं।

1) ग्रीन पीस एक गैर-सरकारी पर्यावरणीय संगठन है, जिसका प्रसार 40 देशों तक है।
2) यह अपना लक्ष्य बताता है, जैसे - अपने सभी विविधता में पोषक जीवन के लिए पृथ्वी की क्षमता सुनिश्चित करना, अपने अभियान को विश्वव्यापी (वाणिज्यिक व्हेल शिकार, आनुवांशिक अभियांत्रिकी और परमाणु विरोधी) मुद्दों पर केन्द्रित करना।

◆ **इंटरनेशलन यूनियन फॉर कन्जरवेशन ऑफ नेचर एण्ड नैचरल रिर्सोसेस (IUCN)**

पारिस्थितिकी संकटों का अध्ययन करने व उन पर सही सुझाव देने के लिए 1948 में International Union for Conservation of Nature and Natural Resources - IUCN का गठन किया गया। इसका मुख्य कार्यालय स्विट्लरलैण्ड में है। IUCN का ही सहायक संगठन विश्व वन्य जीव कोष (World Wildlife Fund - WWF) है। 1969 से IUCN विलुप्त प्राय, असुरक्षित तथा दुर्लभ जीवों तथा पादपों से संबंधित रेड डाटा बुक जारी करता है।

1) यह पर्यावरण और विकास की चुनौतियों का व्यावाहारिक समाधान खोजने में मद्द करने वाली अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है।
2) इसका कार्य मुख्यत: केन्द्रित है - प्रकृति का संरक्षण और मूल्यवर्द्धन, इसके उपयोग के लिए सम्मान और प्रभावशाली शासन सुनिश्चित करना, जलवायु के वैश्विक चुनौतियों के प्रकृति आधारित समाधान प्रदान करना, भोजन और विकास। यह दुनियाभर में सभी क्षेत्र परियोजनाओं का प्रबंधन, वैज्ञानिक अनुसंधान की सहायता करता है और नीति, कानून व सर्वेत्तम प्रथाओं के विकास के लिए सरकारों, गैर-सरकारी संगठनों, संयुक्त राष्ट्र और कंपनियों को एक साथ लाता है।
3) यह विश्व का सबसे पुराना और सबसे बड़ा वैश्विक पर्यावरण संस्था है।
4) वर्तमान में यह विश्व का सबसे बड़ा पेशेवर वैश्विक संरक्षण नेटवर्क है।
5) पर्यावरण और सतत् विकास के लिए अग्रणी प्राधिकरण।
6) प्रकृति के संरक्षण और विकास चुनौतियों के व्यावहारिक समाधान के लिए यह सरकारों, गैर-सरकारी संगठनों, वैज्ञानिकों, व्यापारिक और स्थानीय समुदायों का एक तटस्थ मंच है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

7) इसका प्रशासन एक निर्वाचित परिषद् द्वारा होता है, जिसका निर्वाचन हर चौथे वर्ष पर आईयूसीएन वर्ल्ड कन्सर्वेशन कांग्रेस द्वारा किया जाता है।

8) आईयूसीएन के मिशन के केन्द्र में जैव विविधता संरक्षण है। आईयूसीएन यह प्रदर्शित करता है कि कैसे जैव विविधता दुनिया की सबसे बड़ी चुनौतियों में से कुछ को संबोधित करने के लिए मूलभूत है, जैसे - जलवायु परिवर्तन, सतत् विकास और खाद्य सुरक्षा आदि।

9) वैश्विक और स्थानीय दोनों स्तर पर संरक्षण और सतता देने के लिए आईयूसीएन अपनी ताकत पर निम्नलिखित क्षेत्रों में कार्य का रहा है -

विज्ञान - अपने क्षेत्र के 11,000 विशेषज्ञों द्वारा वैश्विक मानकों की स्थापना, उदाहरणार्थ - प्रजातियों के विलुप्त होने के जोखिम के लिए निश्चित अन्तर्राष्ट्रीय मानक, संकटग्रस्त प्रजाति के आईयूसीएन लाल सूची आदि।

कार्य - सम्पूर्ण विश्व में फैली सैकड़ों संरक्षण परियोजना, जो स्थानीय स्तर से कई देशों तक जुड़ी हुई हैं। इन सभी का उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों और जैव विविधता का सतत् प्रबंधन है।

प्रभाव - 1200 से अधिक सरकारी और गैर-सरकारी सदस्य संगठनों को सामूहिक शक्ति के माध्यम से आईयूसीएन अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण सम्मलनों, नीतियों और कानूनों को प्रभावित करता है।

- **संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP)**

वर्ष 1972 में स्टॉकहोम (स्वीडन)में सम्पन्न हुए संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण सम्मेलन के परिणामस्वरूप UNEP की स्थापना हुई। इसका मुख्यालय नैरोबी (केन्या) में है। इसका उद्देश्य सदस्य देशों को उनके प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करना, वायु प्रदूषण, भूमि की गुणवत्ता में गिरावट तथा मरूस्थलीय क्षेत्र के प्रसार को रोकने में सहायता प्रदान करता है। UNEP के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं -

1) पर्यावरण मॉनिटरिंग, आकलन और पूर्व चेतावनी देना।

2) सम्पूर्ण संयुक्त राष्ट्र प्रणाली में पर्यावरण गतिविधियों को बढ़ावा देना।

3) पर्यावरण मुद्दों पर लोगों को अधिक जागरूक बनाना।

4) पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित प्रौद्योगिकी की जानकारी के आदान-प्रदान की व्यवस्था करना।

5) सदस्य देशों की सरकारों को तकनीकी, कानूनी और संस्थागत परामर्श उपलब्ध कराना।

6) अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण कानूनों तथा विश्व व्यापार के बीच इस उद्देश्य से संबंधों को लगातार नियोजित करना कि नए व्यापारिक आदान-प्रदान से होने वाले परिवर्तनों से पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव न पड़े।

यह संयुक्त राष्ट्र की एजेंसी है, जिसके कुल 6 क्षेत्रीय कार्यालय है। इसके क्रियाकलापों में वायुमण्डल, समुद्र व स्थलीय पारितंत्र, पर्यावरणीय अभिशासन और अर्थव्यवस्था के व्यापक मुद्दे शामिल हैं। यह अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय अभिसमयों के विकास, पर्यावरण विज्ञान व सूचना को बढ़ावा देना आदि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह ऐसे दृष्टांत प्रस्तुत करती है, जिसे नीति के संयोजन के रूप में लागू किया जा सके। राष्ट्रीय सरकारों के साथ नीति के विकास और कार्यान्वयन पर कार्य किया जाता है, जिसमें पर्यावरणी गैर-सरकारी संगठन (NGO) और क्षेत्रीय संस्थाएं भी शामिल होते हैं।

- **संयुक्त राष्ट्र आपदा राहत समन्वयक संगठन (UNDRO)**

इस संगठन की स्थापना 1971 में की गई थी, किन्तु संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 1971 में पारित एक प्रस्ताव के माध्यम से वर्ष 1992 में इसे मानवीय सहायता कार्य विभाग (DHA) के साथ जोड़ दिया गया। UNDRO (DHA के अधीन) के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं -

1) आपदा की स्थिति व विनाश की स्थितियों से निपटने हेतु मानवीय, वैयक्तिक तथा संभरण तंत्रीय (लॉजिस्टिकल) साधनों का तेजी से उपयोग करना।

2) UNDRO की विनाश प्रबंधन प्रणाली 24 घंटे किसी भी आपदा से निपटने को तैयार रहती है।

3) यह प्राकृतिक आपदाओं, पर्यावरण संबंधी आपातकाल अथवा औद्योगिक दुर्घटना की पूर्व सूचना या आशंका की स्थितियों का भी जायजा लेती रहती हैं, जिससें कि अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के प्रयासों में तालमेल रखा जा सके।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

इसके अतिरिक्त पर्यावरण संबंधी कुछ संस्थाएं निम्नलिखित हैं –

- **प्रकृति के लिए विश्वव्यापी कोष (World Wide Fund for Nature - WWF)**

प्रकृति के लिए विश्वव्यापी कोष (WWF) की स्थापना ज्यूरिख (स्विट्जरलैण्ड) में एक चैरिटी के रूप में 11 सितम्बर, 1961 को की गई। इसका मुख्यालय ग्लैण्ड (स्विट्जरलैण्ड) में है। इस संगठन का मूल नाम विश्व वन्य जीव कोष (World Wildilife Fund) था, जो अमेरिका और कनाडा में अभी-भी इसका आधिकारिक नाम है।

1) डब्ल्यूडब्ल्यूएफ उस समय अस्तित्व में आया जब भावुक और प्रतिबद्ध व्यक्तियों के एक छोटे से समूह ने एक घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किए। इसे मोरगेस घोषणा-पत्र (Morges Manifesto) के रूप में जाना जाता है।
2) यह स्वीट्जरलैण्ड कानून के अन्तर्गत पंजीकृत एक स्वतंत्र चैरिटेबल ट्रस्ट है, जिसका प्रशासन एक अन्तर्राष्ट्रीय अध्यक्ष के अधीन न्यासियों के बोर्ड द्वारा चलाया जाता है।
3) यह विश्व के सबसे बड़े संरक्षक संगठनों में से एक है।
4) इसका पहला कार्यालय सितम्बर, 1961 में स्विस कार्यालय मोरगेस में खुला गया।
5) इसका केन्द्रीय सचिवालय डब्ल्यूडब्ल्यूएफ इंटरनेशनल के नाम से जाना जाता है।
6) 1986 में अनुभव किया गया कि यह नाम इसके पूरे क्रियाकलाप को प्रदर्शित नहीं करता है और इसका नाम बदल दिया गया।
7) इसका मिशन ग्रह के प्राकृतिक पर्यावरण का अपघटन को रोकना है और एक ऐसे भविष्य का निर्माण करना है, जिसमें मनुष्य पर्यावरण के साथ सामंजस्य से रहे।
8) विश्व के जैविक विविधता का संरक्षण करना।
9) इसका लोगो पांडा है, जो ची-ची (Chi-Chi) नाम पांडा (Giant Panda) से प्रेरित है। यह पांडा 1961 में लंदन चिड़ियाघर में लाया गया, जब डब्ल्यूडब्ल्यूएफ का निर्माण हुआ था।
10) इसका स्लोगन – एक जीवित ग्रह के लिए (For a Living Planet) है।

- **ग्लोबल एनवायरनमेंट फैसिलिटी (Global Environmetn Facility - GEF)**

रियो-डि जेनेरियो (ब्राजील) के पृथ्वी सम्मेलन (1992) की एक ठोस उपलब्धि GEF की स्थापना रही है। यह एक कोष है, जिसकी स्थापना विश्व बैंक, UNEP तथा UNDP (United Nations Development Programme) द्वारा संयुक्त रूप से की गई है। यह विभिन्न देशों में वैश्विक तापमान में हो रही वृद्धि को रोकना, ओजोन परत संरक्षण, जैव-विविधता संरक्षण तथा अन्तर्राष्ट्रीय जल संसाधनों में प्रदूषण नियंत्रण से संबंधी कार्यक्रमों को बढ़ावा देता है।

विवरण – संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम, संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम और विश्व बैंक जीईएफ परियोजनाओं को लागू करने के लिए प्रारंभिक भागीदार है।

कार्य – इसका कार्य मुख्यत: 7 क्षेत्रों पर केंद्रित है। ये क्षेत्र है – जैव विविधता, जलवायु परिवर्तन, रसायन, अन्तर्राष्ट्रीय जल, भूमि क्षरण, सतत् वन प्रबंधन एवं ओजोन परत क्षरण।

स्लोगन/नारा – हमारे ग्रह में निवेश (Investingin our Planet)।

- **मरूस्थलीय से निपटने हेतु संयुक्त राष्ट्र अभिसमय**
  (United Nations Convention to Combat Desertification - UNCCD)

विवरण – इस अभिसमय की स्थापना मरूस्थलीयकरण से मुकाबला करने और सूखे के प्रभाव को कम करने के लिए की गई है। यह राष्ट्रीय कार्यक्रमों के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और साझेदारी व्यवस्था द्वारा समर्थित दीर्घकालीन रणनीति है। इस अभिसमय का निर्माण रियो सम्मेलन एजेंडा-21 की सिफारिश पर 17 जून, 1994 को फ्रांस के पेरिस में हुआ और यह दिसम्बर, 1996 से प्रभावी हुआ। यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मरूस्थलीयकरण को संबोधित करने वाली प्रथम और एकमात्र संस्था है। यह अभिसमय निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है – भागीदारी, साझेदारी और विकेन्द्रीकरण – गुड गवर्नेंस और सतत् विकास की रीढ़ आदि। वर्ष 2013 में कनाडा पहला देश है, जो इस अभिसमय से अलग हुआ।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

- **विश्व मौसम संगठन (World Meteorological Organization - WMO)**

यह एक अन्तरसरकारी संगठन है, जिसके 191 सदस्य देश है। यह 1873 में स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय मौसम संगठन से बनाया गया है। यह विश्व मौसम संगठन, मौसम विज्ञान (मौसम और जलवायु) हेतु संयुक्त राष्ट्र की संचालकीय जल विज्ञान और भू-भौतिकीय विज्ञान के क्षेत्र में विशिष्ट एजेंसी है। इसके प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं -

1) विश्व मौसम कांग्रेस प्रत्येक 4 वर्ष पर आयोजित होती है और विश्व मौसम संगठन की नीतियों निर्धारित करती है। प्रत्येक सदस्य देश इसमें एक स्थायी प्रतिनिधि नियुक्त करता है। यह स्थायी प्रतिनिधि, देश के राष्ट्रीय मौसम विज्ञान या जल मौसम विज्ञान का निदेशक होता है।
2) कार्यकारी परिषद् प्रत्येक वर्ष बैठक करती है और विश्व मौसम कांग्रेस की नीतियों को लागू करती है।
3) क्षेत्रीय चिंताओं को संबोधित करने के लिए 6 क्षेत्रीय संगठन है।
4) इसकी 8 तकनीकी समितियां विश्व मौसम संगठन और राष्ट्रीय सेवाओं को तकनीकी सिफारिशें प्रदान करती हैं।

- **विश्व प्रकृति संगठन (World Nature Organization - WNO)**

यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण के संरक्षण को समर्पित अन्तरसरकारी संगठन है। यह मुख्यरूप से ऊर्जा दक्षता, जलवायु सुरक्षा, सतत् विकास और सतत् ऊर्जा पूर्ति पर फोकस है। यह एक स्थायी मंच के रूप में व्यावसायिक हितों, विकास और पर्यावरण सुरक्षा के बीच एक सेतु निर्माण का प्रयास कर रही है। इसकी स्थापना मिट्टी, महासागर, जंगल, जल और वायु के वैश्विक खतरों के क्रांतिक चुनौतियों को संबोधित करने के लिए किया गया है। डब्ल्यूएनओ का उद्देश्य प्रकृति का संरक्षण करना तथा हानि व विनाश को रोकना है, मनुष्यों, जानवरों और पौधे के अस्तित्व के लिए जल, भूमि पर और वायु में प्राकृतिक परिस्थितियां प्रदान करना है। साथ ही इस इच्छा से प्रेरित होकर कार्य करना है कि सभी मनुष्यों का प्राकृतिक संसाधनों विशेषकर स्वच्छ जल और वायु तक सुरक्षित पहुंच सुनिश्चित हो सके।

- **पेटा (People for the Ethical Treatment of Animals - Peta)**

1) पेटा विश्व का सबसे बड़ा पशु अधिकार संगठन है। यह एक गैर-लाभकारी कॉरपोरेट है।
2) इसका स्लोगन है - पशु हमारे खाने, पहनने, अनुसंधान, मनोरंजन या किसी भी तरह से दुरूपयोग के लिए नहीं है।
3) पेटा चार क्षेत्रों में ज्यादा ध्यान केंद्रित करता है, क्योंकि इस क्षेत्रों में लम्बे समय ये ज्यादा जानवर कष्ट झेल रहे हैं - फैक्ट्री फार्म, वस्त्र, व्यापार, प्रयोगशाला और मनोरंजन उद्योग।
4) इसके अलावा पेटा अन्य मुद्दों, जैसे - बीवर, पक्षियों और अन्य कीटों की क्रूरतापूर्ण हत्या के साथ-साथ घरेलू पशुओं के साथ क्रूरता के खिलाफ भी कार्य करता है।
5) पेटा सार्वजनिक शिक्षा, क्रूरता जांच, अनुसंधान, पशु बचाव, कानून, विशेष आयोजनों, सेलिब्रिटी भागीदारी और विरोध प्रदर्शन अभियानों के माध्यम से काम करता है।
6) पेटा वेगन भोजन को प्रोत्साहित करता है। वेगन भोजन से तात्पर्य ऐसे भोजन से है, जिसमें किसी भी प्रकार का पशु उत्पाद शामिल न हो।

❐ पर्यावरण संबंधी भारतीय संस्थाएं

भारत में पर्यावरण के क्षेत्र में जागृति बढ़ी है और इसके संरक्षण के लिए प्रयासों में तेजी आई है। अब हम यह समझ चुके हैं कि मानव अस्तित्व को प्रकृति के कोप से बचाने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण एवं पर्यावरण की सुरक्षा नितांत आवश्यक है। पर्यावरण संरक्षण के लिए हमारे देश में पहल शुरू हो चुकी है। इस कार्य को अंजाम देने के लिए जहां सरकारी संगठन आगे आए हैं, वहीं गैर-सरकारी संगठन भी पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में उल्लेखनीय काम कर रहे हैं। यहां हम उन चुनिंदा सरकारी व गैरसरकारी संगठनों के बारे में बता रहे हैं, जो देश में पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में सक्रिय हैं -

- **वर्ल्ड वाइड फंड फॉर नेचर-इंडिया (World Wide Fund for Nature:India)**

डब्ल्यूडब्ल्यूएफआई की अनेक शाखाएं हैं, जो कि देशभर में पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में सक्रिय है। इस संस्था का गठन 1969 में मुम्बई में हुआ था, किन्तु अब इसका मुख्यालय दिल्ली में है। यह संस्था मुख्यरूप से पर्यावरण के प्रति जागरूकता बढ़ाने के प्रयासों

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

के लिए जानी जाती है। साथ ही वन्य जीव संबंधी शिक्षा का प्रचार-प्रसार भी करती है। प्रारंभिक स्तर से पर्यावरण के प्रति जागरूकता बढ़े, इस बात को ध्यान में रखते हुए इस संस्था ने स्कूलों में बच्चों के लिए भारतीय प्रकृति क्लब जैसे कार्यक्रमों की शुरुआत की है।

- **राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण**

हरित न्यायाधिकरण एवं इसके तहत् पर्यावरणीय न्यायालयों का विस्तृत नेटवर्क बनाने वाला भारत विश्व का पहला देश है। राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण का गठन 18 अक्टूबर, 2010 को भारतीय संविधान की धारा 21 के तहत् किया गया। इसका मुख्यालय नई दिल्ली में है तथा भोपाल, पुणे, कोलकाता और चेन्नई में इसके क्षेत्रीय कार्यालय हैं। न्यायमूर्ति लोकेश्वर सिंह पांटा इसके प्रथम अध्यक्ष थे। फिलहाल न्यायामूर्ति स्वतंत्र कुमार इसके अध्यक्ष हैं। इस न्यायाधिकारण के निम्नलिखित उद्देश्य हैं -

1) पर्यावरण संबंधी मामलों का तीव्र गति से एवं प्रभावी निपटान।
2) प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण तथा पर्यावरण संबंधी वैधानिक अधिकार।

- **राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरण (National Environment Appellate Authority - NEAA)**

1) राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरण का गठन पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा किया गया हैं।
2) यह कुछ प्रतिबंधित क्षेत्रों में अपेक्षित पर्यावरण के मंजूरी के मामलों को देखता है।
3) यह राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरण अधिनियम, 1997 के अन्तर्गत स्थापित किया गया।
4) यह पर्यावरण (सुरक्षा) अधिनियम, 1986 के तहत् सुरक्षा प्रदान किए गए विषयों की सुनवाई करता है।
5) यह किसी प्रतिबंध क्षेत्र में, किसी उद्योग या प्रक्रिया या इसी वर्ग के किसी कार्य, जिसे उस क्षेत्र में 1986 के कानून के तहत् प्रतिबंधित किया गया है, से संबंधित मामलों की सुनवाई करता है।
6) यह प्राधिकरण राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण की स्थापना के साथ समाप्त हो गया।

- **राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण**

1) इसका उद्देश्य वैज्ञानिक, आर्थिक, सौंदर्य, सांस्कृतिक तथा पारिस्थितिक मूल्यों के लिए भारत में बाघों की आबादी को बनाए रखने के काम को सुनिश्चित करना तथा हर समय जैव विविधता के महत्वपूर्ण क्षेत्रों को लाभ, शिक्षा एवं जनता के मनोरंजन के लिए राष्ट्रीय विरासत के रूप में संरक्षित रखना है।
2) राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण केन्द्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के अधीन है।
3) यह एक वैधानिक निकाय है, इसलिए इसके द्वारा जारी दिशा-निर्देशों का आधार कानूनी होता है।
4) इसकी स्थापना वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972 में वर्ष 2006 में संशोधन के द्वारा किया गया।
5) केन्द्रीय पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्री इस प्राधिकरण के अध्यक्ष होते हैं।
6) इस प्राधिकरण का मुख्यालय नई दिल्ली में है।
7) बाघों के संरक्षण में संघीय स्वरूप बनाए रखने के लिए यह प्राधिकरण राज्यों के साथ एमओयू (मेमोरंडम ऑफ अंडरस्टैंडिंग) पर हस्ताक्षर करता है।
8) यह प्राधिकरण टाइगर रिजर्व के आस-पास रहने वाली आबादी की आजीविका के हितों का भी ध्यान रखता है।
9) वर्तमान में भारत में 47 टाइगर रिजर्व हैं।

- **द बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी (The Bombay Natural History Society)**

पर्यावरण संरक्षण से जुड़ी द बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी है, जो मुख्यत: पर्यावरण संरक्षण से जुड़े शोधपरक कार्यों के लिए जानी जाती है। अपने शोध कार्यों के जरिए यह सोसायटी पर्यावरण की दिशा में अच्छे निष्कर्ष और सुझाव देती है, जो पर्यावरण संरक्षण संबंधी नीतियों के निर्धारण में सहायक सिद्ध होते हैं। वन्यजीवन से जुड़े अनुसंधानों में इस सोसायटी ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सोसायटी द्वारा प्रकाशित **हार्नबिल जर्नल ऑफ नेचुरल हिस्ट्री** अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की पत्रिका है। **खामोशवादी को बचाओ** इस सोसायटी का चर्चित अभियान था। इसका मुख्यालय मुंबई में है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

- **पर्यावरण शिक्षा केन्द्र (Centre for Environment Education)**

वर्ष 1989 में गठित पर्यावरण शिक्षा केन्द्र अहमदाबाद (गुजरात) में स्थित है। जैसा कि नाम से ही विदित होता है, यह केन्द्र मुख्यरूप से पर्यावरण शिक्षा के क्षेत्र में काम करता है और पर्यावरण से जुड़ी शिक्षा सामग्री तैयार करना इसका मुख्य कार्य है। सह केन्द्र पर्यावरण शिक्षा प्रशिक्षण (टीईई) कार्यक्रम संचालित करता है।

- **द सलीम अली सेंटर फॉर आर्निथोलॉजी एण्ड नेचुरल हिस्ट्री (The Salim Ali Centre for Ornithology)**

कोयंबटूर में स्थित द सलीम अली सेंटर फॉर आर्निथोलॉजी एण्ड नेचुरल हिस्ट्री मुख्यरूप से पक्षी विज्ञान एवं जैव विविधता के क्षेत्र में सक्रिय है। इसके प्रणेता महान पक्षीविद सलीम अली थे। यह केन्द्र पक्षी विज्ञान और जैवविविधता से जुड़े क्षेत्र आधारित कार्यक्रम संचालित करता है। संकटग्रस्त जैव विविधता के संबंध में इस केन्द्र ने लोगों के बीच जागरूकता को बढ़ाया है।

- **द बोटैनिकल सर्वे ऑफ इंडिया (The Botanical Survey of India)**

द बोटैनिकल सर्वे ऑफ इंडिया मुख्यरूप से वनस्पति संसाधनों के सर्वेक्षण के जुड़ी है। यह काफी पुरानी संस्था है, जो 1890 में कोलकाता के रॉयल बोटैनिकल गार्डेन में स्थापित हुई थी।

- **द वाइल्ड इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया (The Wildlife Institute of India)**

वर्ष 1982 में स्थापित द वाइल्ड इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया का मुख्यालय देहरादून (उत्तराखंड) में हैं। यहां वन अधिकारी प्रशिक्षण दिया जाता हैं। वन्यजीव प्रबंधन संबंधी अनुसंधान यहां व्यापक स्तर पर होते हैं। इन अनुसंधानों के तहत् जैविक संपदा से जुड़ी जानकारियों का संकलन किया जाता है। यह संस्थान प्रकाशन कार्य से भी जुड़ा है।

- **जुलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया (Zoological Survey of India)**

1916 में स्थापित जुलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया के इस समय देश में 16 क्षेत्रीय केन्द्र हैं। वर्गिकी और पारिस्थितिकी पर इस संस्थान ने महत्वपूर्ण काम किया है। यह एशिया का वह संस्थान है, जहां उपलब्ध प्रजातियों के नमूने सर्वाधिक संख्या में संग्रहित है। यहां संग्रह किए गए नमूनों की संख्या 10 लाख से भी ज्यादा है।

- **जलवायु और पर्यावरण अनुसंधान संस्थान**

(National Institute for Research on Climate and Environment)

जलवायु और पर्यावरण अनुसंधान संस्थान के इस संस्थान की स्थापना सरकार बंगलुरू में करने जा रही है। यह संस्थान इसरो और केन्द्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के संयुक्त तत्वावधान में खोना जायेगो

❐ जीव-संरक्षण संबंधी कुछ परियोजनाएं

- **बाघ परियोजना (Project Tiger)**

बाघों की गिरती संख्या को रोकने तथा पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखने के लिए 1 अप्रैल, 1973 से भारत में बाघ परियोजना का प्रारम्भ किया गया। अब तक देश में 45 बाघ आरक्षित क्षेत्र स्थापित किए जा चुके हैं। भारत में बाघ जनगणना 2010 के अनुसार भारत में बाघों की संख्या 1706 थी। इस बाघ गणना के अनुसार पश्चिमी घाट तथा उत्तराखण्ड में बाघों की संख्या में सबसे ज्यादा वृद्धि हुई, जबकि मध्य प्रदेश व आन्ध्र प्रदेश में बाघों की संख्या में कमी देखी गई।

- **हाथी परियोजना (Project Elephant)**

भारत में हाथियों की संख्या में हो रही भारी गिरावट तथा हाथी दांत के लिए हो रहे इनके शिकार को देखते हुए 1992 में हाथी परियोजना का प्रारम्भ किया गया। पेरियार, मानस, काजिरंगा, राजाजी, अन्नामलाई, कार्बेट भारत के प्रमुख हाथी संरक्षित क्षेत्र हैं। केन्द्र सरकार ने हाथी संरक्षण के प्रयास को बढ़ावा देने के लिए अक्टूबर, 2010 में हाथी को राष्ट्रीय विरासत पशु घोषित किया है।

- **घड़ियाल प्रजनन परियोजना (Crocodile Breeding Project)**

घड़ियालों की गिरती संख्या को देखते हुए 1975 में भारत सरकार द्वारा UNDP की सहायता से उड़ीसा के तिकरपाड़ा स्थान से घड़ियाल प्रजनन योजना का शुभारम्भ किया।

- **गैंडा परियोजना (Rhinoceros Project)**

एक सींग वाले गैंडे केवल भारत में पाए जाते हैं, परन्तु इनके अवैध शिकार के कारण गैंडों की संख्या में लगातार कमी हो रही

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

है। अत: इनके संरक्षण के लिए 1987 में गैंडा परियोजना आरंभ की गई। गैंडों के लिए असम के काजीरंगा उद्यान, मानस अभ्यारण्य तथा पश्चिम बंगाल का जाल्दा पारा अभ्यारण्य प्रमुख हैं।

- **कछुआ संरक्षण परियोजना (Turtle Conservation Project)**

ओलिव रिडले दक्षिण अमेरिकी कछुए की एक प्रजाति है। भारत में इनका निवास स्थान मुख्यत: उड़ीसा समुद्री तट है, परन्तु इनकी घटती संख्या को देखते हुए उड़ीसा सरकार ने 1975 में उड़ीसा के भितरकणिका अभ्यारण्य में कछुवा संरक्षण परियोजना की शुरुआत की।

- **गिर सिंह परियोजना (Gir Lion Project)**

एशियाई सिंहों के घर के रूप में प्रसिद्ध गिर अभ्याराण्य में केन्द्र सरकार की मद्द से गिर सिंह परियोजना का प्रारम्भ किया गया। यह उद्यान अब तक एकमात्र ऐसा उद्यान है, जहां एशियाई शेर पाए जाते हैं। हाल ही में एशियाई शेरों को संरक्षित रखने के प्रयास हेतु मध्य प्रदेश के श्योपुर में स्थित पालपुरकूनो में इन्हें स्थानान्तरित किया रहा है।

- **चिपको आन्दोलन (Chipko Movement)**

वृक्षों की अवैध कटाई को रोकने तथा पर्यावरण को संरक्षण प्रदान करने के लिए 1973 में सुन्दरलाल बहुगुणा तथा चण्डी प्रसाद भट्ट ने चिपको आन्दोलन की शुरुआत उत्तराखण्ड के चमोली जिले से की। इसमें आन्दोलनकर्ता पेड़ों से चिपक कर उन्हें कटने से बचाते हैं। महिलाओं ने इस आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। 1974 में जब वन-विभाग ने पर्ग मरेंदा जंगल का एक भाग नीलाम किया, जो उस क्षेत्र के स्वंयसेवी लोगों ने वृक्षों से चिपककर आन्दोलन चलाया। यद्यपि ठेकेदारों ने पुलिस की मदद से इस क्षेत्र पर अधिकार करना चाहो, परन्तु आंदोलनकारियों के घोर विरोध के कारण वे अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सके।

- **एप्पिको आन्दोलन (Appiko Movement)**

चिपको आन्दोलन के समान ही दक्षिण भारत में एप्पिको आन्दोलन की शुरुआत हुई, जिसके प्रणेता पाण्डुरंग हेगड़े हैं। यहां एप्पिको का मतलब ही है - पेड़ों का आलिंगन।

Shaping Your Dreams
IAS

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

अपशिष्ट प्रबंधन
Waste Management

अपशिष्ट प्रबंधन एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें उत्पन्न होने वाले विभिन्न अपशिष्ट पदार्थों का निपटान किया जाता है, ताकि मानव के स्वास्थ्य तथा पर्यावरण पर इसका नकारात्मक प्रभाव न पड़े। मानवीय गतिविधियां कई प्रकार के अपशिष्ट को उत्पन्न करती हैं, जो पर्यावरणीय रूप से हानिकारक हो सकता है। इन अपशिष्टों में ठोस, तरल, गैस या रेडियोधर्मी अपशिष्ट हो सकते है। अपशिष्ट उन पदार्थों को कहते है, जो उपयोग के बाद निरर्थक एवं बेकार हो जाते हैं, जैसे - समाचार-पत्र, डिब्बे, पॉलीथीन, राख, आवासीय कचरा आदि। इन अपशिष्ट पदार्थों की समुचित डम्पिंग एवं निपटान के लिए पर्याप्त स्थान की आवश्यकता होती है। भारतीय शहरों एवं कस्बों में कचरा पर्यावरण प्रदूषण का प्रमुख स्रोत है। अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा में सतत् वृद्धि के चलते उनके निपटान की समस्या न केवल औद्योगिक स्तर पर आती है, बल्कि अत्यन्त विकसित तथा विकासशील देशों के लिए भी सिरदर्द बन गई है।

उल्लेखनीय है कि समाज एवं व्यक्तियों की सम्पन्नता तथा वृद्धि और उनके द्वारा उत्पन्न अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा में सीधा धनात्मक संबंध होता है। स्पष्ट है कि अपशिष्टों का उत्पादन वास्तव में आधुनिक समृद्ध भौतिकवादी समाज की देन है। अपशिष्ट प्रदूषकों को उनके स्त्रोतों के आधार पर कई प्रकारों में विभक्त किया जाता है -

1) खनन से उत्पन्न अपशिष्ट।
2) औद्योगिक अपशिष्ट।
3) कृषि अपशिष्ट।
4) नगर पालिका से उत्पन्न अपशिष्ट।
5) पैकिंग अपशिष्ट।
6) मानव अपशिष्ट।
7) जन्तु अपशिष्ट।
8) रेडियोएक्टिव अपशिष्ट आदि।

❐ अपशिष्ट निपटान की पद्धतियां

1) **भूमि में संग्रह (Landfill)** - यह प्रक्रिया अधिकांश देशों में अपनाई जाती है, जिसमें अपशिष्ट पदार्थों को जमीन के अंदर दफना दिया जाता है। अपशिष्ट पदार्थों के संग्रह हेतु अक्सर गैर उपयोगी खानें, खनन रिक्तियां या बड़े-बड़े गड्ढों का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि यह अपशिष्ट निपटान का बहुत ही आसान एवं अपेक्षाकृत कम खर्चीला तरीका है, परन्तु गलत तरीके से किया गया अपशिष्ट संग्रहण पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। कभी-कभी यह कचरा हवा में उड़कर कीड़ों को आकर्षित करता है, तो कभी-कभी आस-पास के क्षेत्र को दूषित कर देता है। वर्तमान में कई अपशिष्ट के ढेरों से प्लास्टिक या अन्य प्रयोग में आने वाली सामग्रीयों का पृथक्करण कर लिया जाता है, तो कहीं इनके ऊपर आधारित कुछ गैस प्रणाली संयंत्र स्थापित किए गए है। कभी-कभी इनको जलाकर विद्युत उत्पादन भी किया जाता है।

2) **भस्मीकरण (Incineration)** - भस्मीकरण अपशिष्ट पदार्थों को निपटाने की एक ऐसी विधि है, जिसमें अपशिष्ट पदार्थों का दहन शामिल है। भस्मीकरण में पदार्थ को अधिक ताप देकर गैस, भाप और राख में परिवर्तित करते है। व्यक्तियों द्वारा या उद्योगों द्वारा इसका प्रयोग तरल, ठोस एवं गैसीय अपशिष्ट के निपटान के लिए किया जाता है, परन्तु जैविक चिकित्सा अपशिष्ट के निपटान हेतु जब इसका प्रयोग किया जाता है, तो कई प्रकार की हानिकारक गैसों का उत्सर्जन होता है। हानिकारक गैसों का उत्सर्जन होने के कारण यह प्रक्रिया विवादित बनी हुई है। भस्मीकरण उन देशों में अधिक प्रचलित है जहां अपशिष्ट पदार्थों के प्रबंधन हेतु भूमि कम है, क्योंकि भस्मीकरण हेतु अधिक क्षेत्र की आवश्यकता नहीं होती है। भट्टी या वायलर के माध्यम से भस्मीकरण कर विद्युत उत्पादन भी किया जाता है।

3) **पुनर्चक्रण (Recycling)** - अपशिष्ट पदार्थों को अन्य संसाधनों या उससे किसी भी मूल्य की वस्तु को उत्पन्न करना पुनर्चक्रण कहलाता है। इसे अपशिष्ट पदार्थ का पुनर्नवीनीकरण भी कहा जाता है। सर्वप्रथम पुनर्चक्रण हेतु अपशिष्ट पदार्थों को संग्रह वाहनों के माध्यम से किया जाता है। तत्पश्चात् इसमें से विभिन्न आवश्यक सामग्रियों को अलग-अलग किया जाता है। पुनर्नवीनीकरण के लिए आम अपशिष्ट उत्पादों में एल्युमिनियम के डिब्बे, कांच की बोतलें, गत्ते, अखबारी कागज, पत्र-पत्रिकाएं आदि शामिल हैं। जटिल उत्पादों, जैसे - कम्प्यूटर और इलेक्ट्रानिक उपकरणों का पुनर्चक्रण अधिक कठिन होता है, क्योंकि इन्हें अलग करना तथा इनके विशिष्ट उपकरणों का निराकरण करना कठिन होता है। भौतिक अपशिष्टों के साथ-साथ जैविक अपशिष्टों का भी पुनर्चक्रण किया जाता है। जैविक अपशिष्टों में पौधे की सामग्री, बचा हुआ भोजन, कागज उत्पादन के अपशिष्ट पदार्थ आदि आते है। इनका पुनर्चक्रण खाद के रूप में किया जाता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

❒ अपशिष्ट पदार्थों के प्रबंधन (Management of Waste Material)

अपशिष्ट पदार्थों के प्रबंधन के अन्तर्गत अपशिष्टों तथा कचरों का संग्रह, समुचित डम्पिंग स्थलों पर उनका भली-भाँति निपटान एवं उनके दहन को सम्मिलित किया जाता है। अपशिष्टों के प्रबंधन में उनको समुचित रूप में इकट्ठा करना प्रथम ठोस कदम है। भारतीय नगरों के नगरपालिकाओं के कचरों के ढेरों को घुमन्तू मवेशी, सुअर, चूहा तथा कबाड़ इकट्ठा करने वाले लोग बिखेरते रहते हैं, जिस कारण कचरा दूर तक फैल जाता है। नगरपालिकाओं के कर्मचारी इन अपशिष्टों को डम्प कर देते हैं। गौरतलब है कि भारतीय नगरों में अपशिष्टों को इकट्ठा करने तथा कचरों के बड़े-बड़े ढेरों को हटाने का कार्य शायद ही नियमित रूप में किया जाता है।

अपशिष्टों के प्रबंधन का अगला महत्वपूर्ण कदम उनका समुचित निस्तारण करना है। इसके लिए आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों को अमल में लाना चाहिए। कचरों के निपटान की प्रक्रिया के अन्तर्गत निम्न को सम्मिलित किया जाता है -

1) अपशिष्ट पदार्थों की विधिवत छटाई एवं उनका समुचित वर्गीकरण।

2) अज्वलनशील या न जलने योग्य अपशिष्टों को समुचित डम्पिंग स्थलों में डम्प करना।

3) ज्वलनशील अपशिष्टों का दहन।

कम्पोस्ट लायक जैविक पदार्थों, जैसे - सड़ी-गली सब्जियों, पौधों की पत्तियों, मवेशियों एवं मनुष्यों द्वारा त्यक्त अपशिष्टों को कम्पोस्ट के गड्ढों में जमा करके प्राकृतिक खाद बनाई जानी चाहिए।

अज्वलनशील ठोस अपशिष्टों, जैसे - धातुओं की अपशिष्ट सामग्री को इनके निपटान के लिए बने या प्राकृतिक रूप से सुलभ स्थलों, जैसे - गड्ढों, खुली बंजर भूमि, भराव क्षेत्र आदि में डम्प किया जाता है।

ज्वलनशील अपशिष्टों को विशिष्ट प्रकार से बनाए गए भस्मकारी यंत्रों की सहायता से जलाया जा सकता है। इस कार्य के लिए दो विशेष प्रकार के उपकरणों का प्रयोग किया जाता है - मल्टीपल हर्थ फरनेस (Multiple Hearth Furnace) तथा फ्लूडाइज्ड बेड फरनेस (Fulized Hearth Furnace)। ताप अपघटन या पाइरोलाइसिस (Phyrolysis) विधि द्वारा भी ठोस अपशिष्टों का शोधन किया जाता है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत भंजक आवसन (डिस्ट्रक्टिव डिस्टिलेशन) की प्रक्रिया के माध्यम से ठोस अपशिष्टों को गैसों (जैसे कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड, H_2, C_2, H_2, C_2, H_4 आदि) तथा तरल पदार्थों (यथा-टार, हल्के तेल आदि) में विघटित करके अलग कर लिया जाता है। इस तरह ज्वलनशील अपशिष्टों को जलाने से एक तरफ तो उनके निपटान की समस्या का निदान हो जाता है, दूसरी तरफ इस प्रक्रिया से विभिन्न उपयोगी कार्यों के लिए ऊर्जा भी सुलभ हो जाती है।

❒ अपशिष्ट प्रबंधन की अवधाराणाएं (Concepts about Waste Management)

अपशिष्ट प्रबंधन की अनेक अवधाराणाएं है, जो उनके उपयोग के हिसाब से शहर और क्षेत्रों में अलग-अलग होती हैं। कुछ सर्वाधिक सामान्य परन्तु व्यापक रूप से प्रयोग की जाने वाली गई अवधारणाएं निम्नलिखित हैं -

• अपशिष्ट पदानुक्रम आरेख (Waste Hierarchy)

अपशिष्ट पदानुक्रम से सन्दर्भित है '3R' अर्थात् - लघु (Reduce), पुनः प्रयोग (Reuse) और पुनर्चक्रण (Recycle)। लघु (Reduce) के अन्तर्गत अपशिष्ट पदार्थों को कम तथा उनकी वांछनीयता के अनुसार वर्गीकृत किया जाता है । पुनः प्रयोग (Reuse) में अपशिष्टों में से ऐसी वस्तुओं को पृथक् कर लिया जाता है, जिनका दोबारा उपयोग संभव हो। पुनर्चक्रण में अपशिष्टों पदार्थों का उपयोग करते हुए ऐसे उत्पाद बनाए जाते है, जो बाजार में उपस्थित उत्पादों से सस्ते हो। अपशिष्ट पदानुक्रम का लक्ष्य इन वस्तुओं से अत्यधिक प्रयोगात्मक मुनाफा पाना और न्यूनतम अपशिष्ट की रचना करना है।

• विस्तारित निर्माता जिम्मेदारी (Extended Producer Responsibility)

विस्तारित निर्माता जिम्मेदारी (EPR) एक ऐसी नीति है, जो उत्पाद के जीवनचक्र से सम्बंधित खर्चों (जीवन समाप्ति उपरान्त निपटान के खर्च समेत) को उत्पाद के बिक्री मूल्य में एकीकृत करने के लिए रची गई है। विस्तारित निर्माता जिम्मेदारी का उद्देश्य बाजार में पेश किए उत्पादों के पूरे जीवनचक्र और डिब्बाबंदी पर जवाबदेही लागू करना है। अन्य शब्दों में जो कंपनियां उत्पादों को उत्पादित, आयातित या उनकी बिक्री करती हैं, उन्हें उसके उपयोगी जीवन के उपरान्त बने अपशिष्ट उत्पादों के लिए भी जिम्मेदार होने की आवश्यकता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

- **प्रदूषण करने वाला भुगतान करेगा सिद्धान्त (Polluter Pays Principle)**

प्रदूषण करने वाला भुगतान करेगा सिद्धान्त एक ऐसा सिद्धान्त है, जिसके अन्तर्गत प्रदूषण करने वाला वातावरण पर कु-प्रभाव के अनुसार भुगतान करता है। अपशिष्ट प्रबंधन के संदर्भ में इसकी सम्मति आमतौर पर अपशिष्टजनक की आवश्यकता की ओर है, जो उचित अपशिष्ट निपटान का भुगतान करे।

❒ ई-अपशिष्ट एवं इसका प्रबंधन

इलेक्ट्रॉनिक अपशिष्ट या ई-अपशिष्ट का अर्थ उस गौण उत्पाद से है, जो इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों के खराब होने के पश्चात् कचरे के रूप में बचता है। प्राय: विकसित देशों द्वारा इस ई-अपशिष्ट को विकासशील देशों में निपटाने हेतु भेज दिया जाता है। इस प्रकार की भारी डम्पिंग मानव व जैव पारिस्थितिकी के लिए एक चिंताजनक विषय है। ई-अपशिष्ट की छंटाई से निकलने वाले रेडियोधर्मी विकिरण से पर्यावरण एवं मानव कुप्रभावित हो रहे हैं। भयावह गति से बढ़ रहे ई-अपशिष्ट से विकासशील देशों के साथ-साथ विकसित देशों का भी भू-गर्भीय जल विशाक्त हो रहा है। कुछ गैर-सरकारी संगठनों द्वारा जारी की गई रिपोर्ट के मुताबिक अमेरिका में पुनर्चक्रण हेतु 80 प्रतिशत ई-अपशिष्ट को गुप-चुप तरीके से भारत, चीन एवं पाकिस्तान, जैसे देशों में भेजा जा रहा है, जिसका कारण इन देशों में कचरा निस्तारण का सस्ता एवं पर्यावरणीय कानूनों का ढुलमुल होना है। अमेरिका के अलावा जर्मनी, ब्रिटेन, नीदरलैण्ड और ऑस्ट्रेलिया विषैले ई-अपशिष्ट के सबसे बड़े निर्यातक हैं।

एक अनुमान के अनुसार, वर्तमान में प्रयोग किए जा रहे लगभग 50 करोड़ कम्प्यूटरों में 28.7 लाख किग्रा प्लास्टिक, 70 लाख किग्रा शीशा तथा 2.86 लाख किग्रा पारा है। ई-अपशिष्ट पुनर्चक्रण प्रक्रिया के अतंर्गत प्लास्टिक व तारों को खुले में जलाना, विषकारी पदार्थों से बने सर्किट बोर्डों को पिघलाना व जलाना, शीशायुक्त कैथोड किरण नलिका को तोड़ना व उसके निस्तातरण से पर्यावरण एवं जन स्वास्थ्य की भारी क्षति हो रही है। पर्यावरणीय संगठनों ने अमेरिका तथा यूरोप का अनुकरण करते हुए 1989 में इण्डोनेशिया में अपशिष्ट पदार्थों के प्रबंधन हेतु बेसेल समझौते की मांग की। इस समझौते के अन्तर्गत विकासशील देशों को हानिकारक ई-अपशिष्ट पदार्थों के निर्यात पर विश्व स्तरीय प्रतिबंध लगाने का प्रावधान है।

मूल्यवान धातुओं से लेकर टूटे कांच तक और पुराने समाचार-पत्रों से लेकर कपड़ों तक कई प्रकार के पदार्थों को पुनर्चक्रित किया जा सकता है। पुनर्चक्रण प्रक्रिया मूल पदार्थ को पुनरावर्तित करती है और नए उत्पादों में इसका प्रयोग करती है। सामान्य रूप से पुनर्चक्रित पदार्थों से नए उत्पाद बनाने में कम लागत आती है और नए पदार्थों के प्रयोग की तुलना में कम ऊर्जा की जरूरत होती है। पुनर्चक्रण से प्रदूषण भी घटता है तथा यह कचरे की मात्रा को घटाकर कूड़ा स्थलों के लिए आवश्यक भूमि की मात्रा को घटाता है। कागज उत्पादों को भी पुनर्चक्रित किया जा सकता है, जैसे - सर्वाधिक सामान्य पुनर्चक्रित कागज़ उत्पाद अखबारी कागज होता है।

❒ चिकित्सीय अपशिष्ट प्रबंधन

चिकित्सा अपशिष्ट प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य अस्पतालों से निकलने वाली दवाइयों, दैनिक इस्तेमाल में आने वाली निडिल, इंजेक्शन, ब्लड बैग, ब्लड सेम्पल आदि अपशिष्ट पदार्थों का निपटान करना है, ताकि इस कचरे से होने वाले रोगों से बचा जा सके। देश में चिकित्सालयों के संक्रामक कचरे के प्रबंधन हेतु एक ऐसी प्रौद्योगिकी का आयात किया गया, जिसके माध्यम से चिकित्सीय कचरे का परिवर्तित कर इसके आकार को बदला जा सकता है। इस प्रौद्योगिकी में 3 उपकरणों - इंसीनेरेटर, ओटोक्लेव तथा श्रेडर के जरिए चिकित्सीय कचरे का प्रबंधन किया जाता है। इंसीनेरेटर का कार्य अस्पताल के कचरे को जलाकर राख बना देना है, लेकिन इसके तहत् ठोस एवं तरल कचरे के मिलने से जैविक समस्या रासायनिक समस्या में बदल गई। ओटोक्लेव की मदद से अस्पताल के कचरे को कीटाणु रहित किया जाता है, परन्तु यह उपकरण भी अकेले समस्या का समाधान नहीं कर सकता है। श्रेडर का मुख्य कार्य अस्पताल के चिकित्सीय कचरे को काट-पीटकर उसके आकार को बदलना है।

उल्लेखनीय है कि पर्यावरण व वन मंत्रालय के बायोमेडिकल वेस्ट अधिनियम, 1998 के तहत् अस्पताल के कचरे का पूर्ण प्रबंधन करने का प्रयास किया गया तथा इस दिशा में 30 लाख की आबादी के ऊपर सभी महानगरों अथवा 500 बिस्तरों से ऊपर के सभी अस्पतालों में इंसीनेरेटर, ओटोक्लेव तथा श्रेडर लगाए जाने पर बल दिया गया।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube

❐ भारत में अपशिष्ट पदार्थों की स्थिति

भारत ने पिछले तीन वर्षों में खतरनाक अपशिष्ट आयात देखा है। इस अपशिष्ट आयात में 48 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस दौरान 6400000 टन खतरनाक अपशिष्ट पश्चिम से भारत आए और 5.9 लाख टन घरेलू उत्पादन किया गया। इस कचरे में अधिकांश अपशिष्ट पदार्थ धातु, इलेक्ट्रॉनिक्स और प्लास्टिक थे, जो वातावरण को दूषित कर सकते थे। पारा तथा अन्य जहरीले पदार्थ, जो गंभीर बीमारी उत्पन्न करते हैं तथा पर्यावरण के नुकसान का कारण बन सकते हैं।

भारत में इन अपशिष्ट पदार्थों को रीसाइक्लिंग के लिए आयात किया जाता है। विकसित देशों से ये अपशिष्ट पदार्थ अधिकांशत: मुम्बई, चेन्नई, कोलकाता, कोचीन और विशाखापत्तनम के बंदरगाहों के माध्यम से भारत में प्रवेश करते हैं। भारत के अधिकांश बंदरगाहों में स्कैनिंग विकिरण प्रौद्योगिकी नहीं है। इन खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों का वितरण केवल आंखों से देखकर ही कर दिया जाता है।

इन अपशिष्ट पदार्थों को भारत के विभिन्न शहरों में वितरित कर दिया जाता है, जैसे – दिल्ली में सीलमपुर, मुण्डका, मुंबई में धारावी आदि वितरण केन्द्रों पर भेज दिया जाता है। रीसाइक्लिंग के पश्चात् बनने वाले ये उत्पाद ब्राण्डेड उत्पादों की तुलना में सस्ते होते हैं। दिल्ली के कई क्षेत्रों में से एक सीलमपुर इन इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों एक बड़ा बाजार है, लेकिन यहां की अधिकांश दुकानें पंजीकृत नहीं हैं। ऐसे क्षेत्र अनौपचारिक रूप से विस्तृत होते हैं, जो पर्यावरण के मानदण्डों को भी पूरा नहीं करते हैं।

भारत को अपने घरेलू कचरे के सिर्फ 30 प्रतिशत भाग को ही संभालने की क्षमता है। हालांकि रीसाइक्लिंग उद्योग अस्थायी रूप से लाभदायक हैं, लेकिन इनसे पर्यावरण को क्षति होती है। मुरादाबाद के निकट रामगंगा नदी की उपजाऊ मिट्टी प्लास्टिक की राख मिलने के कारण काले रंग में बदल गई है। निजी अपशिष्ट प्रसंस्करण उद्योगों पर सरकार का नियंत्रण न होने तथा इनका पर्यावरण के लिए हानिकारक होने के कारण ये उद्योग भारत में सार्वजनिक सुरक्षा के लिए खतरा भी बन गए हैं।

भारत सरकार ने अपशिष्ट पदार्थों के निस्तारण के लिए कानून बनाए हैं। खतरनाक अपशिष्ट नियम, 1989 के अन्तर्गत खतरनाक अपशिष्टों के अपघटन हेतु नियम एवं विनियम बनाए गए हैं । पर्यावरण अधिनियम 1986 में भी इस संबंध में दिशा-निर्देश हैं। निवारक योजनाओं के जरिए औद्योगिक प्रदूषण को कम करने के लिए लघु उद्योग क्षेत्रों में कचरा न्यूनीकरण परिक्षेत्रों की स्थापना व संचालन करने के लिए सरकार वित्तीय सहायता भी उपलब्ध कराती है। म्युनिसिपल ठोस अपशिष्ट नियम 2003, फ्लाई-ऐश अधिसूचना 1999 तथा पुनर्चक्रीय प्लास्टिक नियम 1999 आदि का गठन करके सरकार ने देश में खतरनाक पदार्थों तथा अपशिष्टों के प्रबंधन को कानूनी ढांचा प्रदान किया गया है। बैटरी नियम, 2001 के जरिये देश में इस्तेमाल की गयी सीसायुक्त एसिड बैटरियों के संकलन, प्रसार और पुनर्चक्रीयकरण सहित आयात को नियमित किया जाता है। इस नियम के अनुसार उपभोक्ता के लिए इस्तेमाल की गयी बैटरियों को वापिस करना अनिवार्य बनाया गया है। भारत में परमाणु कचरे को सुरक्षित रखने की विधि भी खोज ली गयी है। अपशिष्ट प्रबंधन मानव जीवन को सुरक्षित रखने के लिए अपरिहार्य हो गया है। आवश्यकता है उच्च प्रौद्योगिकी विकसित करने की ताकि अपशिष्टों को पूर्ण नष्ट करने से पूर्व उन्हें उपयोगी वस्तु में बदला जा सके।

Shaping Your Dreams

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube